प्रकाशक
गयाप्रसाद एंड संस
शफ़ाखाना रोड
आगरा

मुद्रक :—
सर्वोदय प्रेस
होप सर्कस
अलवर

निवेदन

यह-छोटी सी पुस्तक हाईस्कूल के विद्यार्थियों की आवश्यकता का ध्यान रखकर लिखी गई है। इसमें केवल उन्हीं हिन्दी-साहित्य-सेवियों का संक्षिप्त परिचय है जिनकी रचनाओं से इन कक्षाओं के विद्यार्थी प्रायः परिचित होते हैं। अभी तक इन छात्रों का साहित्यिक ज्ञान सीमित ही रहा है। हाँ, अब इस त्रुटी को दूर करने का प्रयत्न होने लगा है। प्रस्तुत पुस्तक से यह त्रुटी तो क्या दूर होगी, विद्यार्थियों को थोड़ा बहुत लाभ ही हो तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे।

गद्य-लेखकों के परिचय बन्धुवर श्री प्रेमनारायन टंडन की 'गद्य-निर्माता' नामक पुस्तक से संक्षिप्त करके प्रथम संस्करण में दिए गए थे। इस बार भी यह भाग पूर्ववत् ही रहने दिया है।

लखनऊ — लेखक—

१५-१-१९४७

विषय सूची

हिंदी-लेखक पृष्ठ

हिंदी-कवि

परिशिष्ट



इन्होंने प्रायः मुक्तक छन्द ही लिखे हैं। छन्दों में सवैया, कवित्त, दोहे आदि इन्हें विशेष प्रिय थे। इनकी कविता में एक ओर तो शृङ्गार की प्रधानता है और दूसरी ओर भक्ति की। ये दोनों विषय इन्होंने पूर्व हिंदी-कविता से प्रभावित होकर अपनाए थे। देश और समाज की परिस्थिति के अनुसार इन्होंने देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएं भी लिखी थीं।

(३) गद्य के क्षेत्र में—इन्होंने ब्रज-भाषा को छोड़ खड़ी बोली को अपनाया। उस समय कुछ लोग संस्कृत-प्रधान भाषा के पक्षपाती थे और कुछ अरबी-फ़ारसी प्रधान के। प्रचार की दृष्टि से दोनों ही रूप भाषा की उन्नति में बाधक थे। अतः भारतेन्दुजी ने मध्यम मार्ग अपनाकर हिन्दी को प्रचार-प्रसार के योग्य बनाया।

(४) विविध विषय—भारतेन्दुजी ने राजभक्ति और देश-प्रेम विषयक लेख और धर्म-ग्रन्थ लिखे और समाज तथा धर्म की कुरीतियों की भी आलोचना की। हास परिहास और व्यंग्यपूर्ण लेख इन्होंने लिखे तथा इतिहास, अनुसंधान-सम्बन्धी गम्भीर विषयों को भी नहीं छोड़ा। उपन्यास और आख्यायिका की रचना के लिए भी इन्होंने प्रयत्न किया।

(५) समाचार पत्र—हिंदी पत्रों का जन्म-दाता भी हम वास्तव में बाबू हरिश्चन्द्र को ही कह सकते हैं। सन् १८६७ में इन्होंने "कवि वचन-सुधा", सन १८७३ में "हरिश्चन्द्र मैगजीन" और दूसरे ही वर्ष स्त्री-शिक्षोपयोगी "बाल बोधनी" नामक मासिक पत्रिका निकाली।

(६) प्राचीन पुस्तकों का प्रकाशन—प्राचीन कवियों के ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी भारतेन्दुजी ने ध्यान दिया था और अपने पत्रों में क्रमशः उनको छापा भी था।

(७) अनुवाद—कई नाटकों के अनुवाद के अतिरिक्त संस्कृत और बङ्गला-साहित्य की अन्य विषयों की पुस्तकों के अनुवाद में भी इन्होंने हाथ लगाया।

मुख्य ग्रन्थ

(१) नाटक—विद्यासुन्दर, पाखंड विडंबन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, धनंजय विजय, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा, मुद्रा-राक्षस, दुर्लभ बन्धु, भारत जननी।

(२) काव्य—भारत वीरत्व, रिपन अष्टक, विजयनी विजय वैजयन्ती आदि राजभक्ति-विषयक, प्रेम फुलवारी, प्रेम प्रलाप, प्रेमाश्रुवर्षण, वर्षाविनोद, प्रेम माधुरी, कृष्ण चरित्र आदि भक्ति और प्रेम काव्य हैं।

(३) गद्य—अनेक साहित्यिक लेख, काश्मीर-कुसुम, बून्दी का राजवंश, रामायण का समय, आदि इतिहास, सुलोचना, शीलवती, सावित्री चरित्र आदि आख्यान लिखे।

विषय

भारतेन्दुजी ने गद्य में नाटक (जिनमें कविता भाग भी प्रचुर है) और इतिहास सम्बन्धी लेख अधिक लिखे हैं। "नाटक" आदि कुछ साहित्यिक लेख भी इन्होंने लिखे थे। विषय के अनुसार भारतेन्दुजी की शैली के हम निम्नलिखित प्रधान भेद कर सकते हैं।

(१) परिचयात्मक (२) गम्भीर—(क) साहित्यिक (ख) ऐतिहासिक गवेषणात्मक।

शैली

(१) परिचयात्मक शैली—भारतेन्दुजी की परिचयात्मक शैली में न तो संस्कृत के कठिन शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है और न फारसी के प्रचलित शब्दों का बहिष्कार ही। यह उस समय के संस्कृत-प्रधान तथा अरबी फारसी-प्रधान दोनों भेदों के बीच का मार्ग था। इसी शैली में वाक्य छोटे-छोटे हैं और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है जिससे भाषा में सजीवता आगई है।

इस शैली का दूसरा रूप हमें उन स्थलों पर मिलता है जो भारतवासियों की दुर्दशा देख कर दुःख के कारण और कभी-कभी क्षोभ, क्रोध, आदि के कारण, भावावेश में लिखे गए थे। प्रायः उनकी भाषा बहुत जोरदार, हृदय-स्पर्शी और भावपूर्ण हो जाती थी। यही इस शैली की विशेषता है।

(२) गंभीर शैली—इसमें भाषा गंभीर और शुद्ध संस्कृत-प्रधान है और इसका कारण विषय का गंभीर होना है। कहीं कहीं गंभीर लेखों में उनकी भाषा में कृत्रिमता की झलक भी मिलती है।

हास्य और व्यंग्य का पुट—भारतेन्दुजी ने अपनी रचनाओं को हास्य और व्यंग्य की पुट देकर विशेष रोचक बनाया है। यहाँ एक अवतरण पाठकों के मनोरंजन के लिए दिया जाता है।

इतने में कोलाहल हुआ 'लाट साहब आते हैं।' राव नारायण दास साहिब ने फिर अपने मुख को खोला और पुकारे स्टैंड अप (खड़े हो जाओ)। सब के सब एक संग खड़े हो गए। राव साहिब का 'सिट डौन' कहना तो सबको अच्छा

लगा पर 'स्टैंड अप' कहना सबको बुरा लगा मानो भले बुरे का फल देने वाले राय साहिब ही थे। इतने में फिर थाने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये। वाह वाह दरबार क्या था 'कठपुतली का तमाशा' था या बहुरूपियों की कवायद थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगताना था या 'फौजदारी की सजा' थी।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग—प्रायः उनकी सभी रचनाओं में हम पाते हैं। इनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और शक्ति आ जाती है। लोहे के चने चबाना, गूँगे का गुड़, आँखें भर आना, नजर चुराना, छाती ठंडी होना, छापा मारना, अन्धे की लकड़ी, जी से उतरना, नीचा दिखाना, कुछ न गिनना, आदि मुहावरों का उन्होंने सुन्दर प्रयोग किया है।

भाषा

भारतेन्दुजी की भाषा में न तो लल्लूलाल का व्रजभाषापन दिखाई देता है और न सदल मिश्र का पूर्वीपन ही। मुन्शी सदा सुखलाल की पंडिताऊ भाषा के भी भारतेन्दुजी पक्ष में नहीं थे और राजा शिवप्रसाद के उर्दूपन के तो वे विरोधी थे ही। साथ ही राजा लक्ष्मणसिंह की विशुद्धता का भी उन्होंने अनुकरण नहीं किया।

भारतेन्दुजी की साहित्य सेवा का उद्देश्य अपना मनोरंजन करना न होकर जनसाधारण को उन्हीं की दशा से परिचित करा कर साहित्य की उन्नति करना था। इस कार्य में उन्हें सफलता तभी मिल सकती थी जब वे जनता की भाषा में ही अपने भाव प्रकट करें। यही उन्होंने किया भी; भाषा के दोनों कृत्रिम अप्रचलित रूपों को छोड़कर उन्होंने तीसरे सरल और

प्रचलित रूप को ग्रहण किया; मध्यम मार्ग का अनुसरण किया उनकी इस भाषा में अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं परन्तु वे ही जो हिन्दी भाषा में अरबी-फारसी शब्द प्रयुक्त हुए हैं और जो हिन्दी भाषा में घुल मिल गए थे। कफन, कलेजा, जाफत. खजाना, जवाब आदि शब्द भी प्रचलित रूप में ही अपनाए हैं, उनके नीचे नुकता नहीं किया गया है। इसी प्रकार अङ्गरेजी के टिकट, कमेटी, पतलून, आदि शब्द भी उन्होंने लिखे किन्तु उनका शुद्ध रूप लिखने का प्रयत्न नहीं किया गया। संस्कृत के जजमान, मूरत, नहान, लच्छन अचरज आदि शब्द हिन्दी में घुलमिलकर उसी के हो गए हैं। भारतेन्दुजी ने इनका प्रयोग भी इस रूप में किया है तत्सम में नहीं। इस प्रकार बाबू साहब ने दोनों शैलियों के बीच ऐसा सफल सामंजस्य स्थापित किया कि भाषा में जीवन आ गया और इसका रूप और भी व्यवहारिक और सरल हो गया। यही उनकी प्रमुख विशेषता है। इसीसे पंत जी ने लिखा था—

'भारतेन्दु कर गए भारती की वीणा निर्माण।'

पंडित प्रताप नारायण मिश्र

परिचय—आपका जन्म सन् १८५६ में हुआ था। इनके पिता पंडित संकटाप्रसादजी ज्योतिषी थे। उन्होंने पुत्र को पढ़ाने का प्रयत्न तो किया पर बालक की मस्त तबियत बंधन में न लग सकी। अतः हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, बँगला आदि का अध्ययन उन्होंने घर पर ही किया।

हिंदी-सेवा

मिश्रजी ने लेख लिखे हैं और कविताएं भी। पर उनका वास्तविक महत्व अपने साहित्यिक लेखों के कारण ही है। उनके लेखों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हास्य और व्यंगपूर्ण ढंग से वैसे लेख हिन्दी में उनके पहले ही नहीं बाद भी, कम ही लिखे गए हैं।

मुख्य ग्रन्थ

(अ) अनुवाद—नीतिरत्नावली, संगीत शाकुन्तल, सेन वंश का इतिहास, सूबे बंगाल का भूगोल।

(आ) नाटक—कलिप्रभाव, हठी हमीर और गौ-संकट।

(इ) रूपक—कलिकौतुक और भारत दुर्दशा।

(ई) काव्य—मन की लहर, शृङ्गार-विलास, लोकोक्ति-शतक, ब्राडला-स्वागत, तृप्यंताम और मानस-विनोद।

(२) सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का सुधार करना और (३) उर्दू से हिंदी का पीछा छुड़ाना था। इन्हीं बातों को लेकर उन्होंने अधिकांश लेख लिखे थे। कुछ लेख उनके साहित्यिक भी हैं।

शैली

मिश्रजी की शैली दो प्रकार की है। पहली में गंभीरता की पुट है और दूसरा रूप हास्य और व्यंग्यपूर्ण। पहले प्रकार की शैली के उदाहरण बहुत कम हैं; शायद उन्होंने एक आध लेख ही गंभीर शैली में लिखा है। इससे यह न समझना चाहिए कि मिश्रजी गंभीर और विचारात्मक गद्य लिख ही नहीं सकते थे। पर ऐसा करना एक प्रकार से, उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। वे सदैव इस बात की चेष्टा किया करते थे कि चाहे जैसा ही विषय हो, उसे विनोदपूर्ण और मनोरंजक बना दिया जाय,

उनकी शैली की दो मुख्य विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता है, मुहावरों और कहावतों का सुन्दर और समयानुकूल प्रयोग करना। साधारण मुहावरों का जैसा चमत्कारपूर्ण प्रयोग मिश्रजी ने किया है वैसा हिंदी के अन्य लेखकों की रचनाओं में कम देखने को मिलता है। कहीं कहीं तो इनकी झड़ी सी लग गई है। देखिए—

"डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में, चाहे जहां की जो बात हो जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, बात खुलती है, है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती

है। हमारे मुहावरे भी सभी कान पान ही पर निर्भर हैं। “कान ही हाथी पाइये कान हाथी पाँव।” कान ही से पराये अपने और अपने पराये हो जाते हैं।

प्रतापसमीक्षा पृष्ठ १०६

मिश्रजी के कई लेखों के शीर्षक भी मुहावरे या कहावत ही हैं।

उनकी शैली की दूसरी विशेषता है, उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप। इसका तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों हम उनके लेख पढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों हम उनकी प्रकृति आदि से परिचित होते जाते हैं, तथा उनके स्वभाव की अन्य विशेषतायें जानने की इच्छा प्रबल होती जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जैसा उनका जीवन सरल और सीधा सादा था उसी प्रकार उनकी शैली में भी प्रचलित भाषा और विनोद की पुट है। अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करके कृत्रिमता लाने की चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। जब कृत्रिमता रही नहीं, तब हम उनकी रचनाओं में सरलता पाते हैं। यही एकरूपता और सरलता मिश्रजी की शैली की विशिष्टता का प्रधान कारण जान पड़ता है।

अपनी इस अन्तिम विशेषता के कारण ही मिश्रजी ने अपने समकालीन हिन्दी-साहित्य-सेवियों में ही नहीं, द्विवेदी युग के कुछ साहित्य-निर्माताओं में भी अपना विशेष स्थान बना लिया है।

भाषा

मिश्रजी ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र की तरह ही, जनसाधारण की प्रचलित भाषा को अपनाया। पर भारतेंदुजी की भाषा में

जितनी गहरी नागरिकता की छाप है, मिश्रजी की भाषा में उतनी ही ग्रामीणता की पुट है। साथ ही मिश्रजी की भाषा में पूर्वीपन की झलक भी है। उन्होंने अपनी जन्मभूमि में प्रचलित घरेलू शब्दों और मुहावरों का निःसंकोच प्रयोग किया है। "आनन्द लाभ करता है", "तो भी", "बात रही", "शरीर भरे की", "चाय की सहाय से", "कहाँ तक कहिए", "हैं के अने" आदि प्रयोगों से पंडिताऊपन और ग्रामीणता झलकती है। नेचर, टाइप, मेमोरियल, नोटिस आदि अङ्गरेजी शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है।

रिपि, रितु, प्रहसन, औगुण, आदि शब्दों को उन्होंने गलत भी लिखा है। कहीं-कहीं पर व्याकरण-सम्बन्धी दोष भी मिलते हैं। विराम-चिन्हों का प्रयोग भी उन्होंने कम किया है। इतना सब कुछ होते हुए भी मिश्रजी की भाषा में सजीवता, चलाऊपन, रोचकता और सादगी है।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

भट्टजी का जन्म सन् १८४४ में, प्रयाग में हुआ था। बाल्यकाल में इन्हें संस्कृत और अँगरेज़ी की शिक्षा मिली। बाद में, आप जमुना मिशन स्कूल में अध्यापक हो गए। फिर आप यह कार्य छोड़ हिंदी-साहित्य सेवा करने लगे और कुछ ही समय में आपकी गिनती प्रसिद्ध लेखकों में की जाने लगी।

सन् १८७६ में ये "हिन्दी-प्रदीप" नामक मासिक पत्र के संपादक हो गए और लगभग ३२ वर्ष तक रहे। इसके द्वारा इन्होंने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की।

हिंदी-सेवा

(१) साहित्यिक लेख—भारतेन्दु युग के प्रमुख गद्य-लेखकों में साहित्यिक निबन्ध लिखने वाले पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्टही हैं। भट्टजी के लेखों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनमें "साहित्यिकता" की आभा फूट-फूट कर निकलती है। साहित्यिकता और कल्पना के मिश्रण ने इनके लेखों को और भी प्रिय बना दिया है। इनके लेखों में इनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। इसीसे इनके लेखों की तुलना अंगरेज़ी के सुप्रसिद्ध निबन्ध लेखक चार्ल्स लैंब के लेखों से की जाती है। "आँसू", "चन्द्रोदय", "बाल्यकाल" आदि लेख बड़े सुन्दर और हमारे साहित्य की स्थायी निधि हैं।

(२) गद्य काव्य के जन्मदाता—जिस गद्य-काव्य की ओर

तीखा और मार्मिक हो जाता था। ऐसे अवतरणों की भाषा भी सरल और चलती हुई है।

मुहावरों का प्रयोग—भट्टजी ने भी अपने युग के भारतेन्दु तथा मिश्रजी आदि लेखकों की भांति मुहावरों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है और गंभीर लेखों में भी मुहावरों की झड़ी सी लगादी है। "बातचीत" जैसे गंभीर विषय पर गंभीर शैली को अपनाते हुए भी आपने एक स्थान पर लिखा है—

वही हमारी साधारण बातचीत का ऐसा घरेलू ढंग है कि उसमें न करतल ध्वनि का मौका है, न लोगों के कहकहे उड़ाने की कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेम पूर्वक संलाप कर रहे हैं। कोई चुटीली बात आगई, हँस पड़े। मुसकराहट से ओठों का केवल फड़क उठना ही इस हँसी की अंतिम सीमा है। स्पीच का उद्देश्य सुनने वालों के मन में जोश और उत्साह पैदा करना है। घरेलू बातचीत मन रमाने का एक ढंग है। इसमें बातचीत की सब संजीदगी बेकदर हो धक्के खाती फिरती है।"

इनकी शैली में दो एक अन्य बातें भी मार्के की है। मिश्रजी की ग्रामीणता के स्थान पर भारतेन्दुजी की-सी नागरिकता के दर्शन इनकी शैली में होते हैं। हिंदी में कोष्ट: बन्दी का प्रयोग भी पहले पहल भट्टजी ने ही किया था और विराम चिन्हों का समुचित प्रयोग भी उनके लेखों में मिलता है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से भी भट्टजी की शैली प्रधानतः दो प्रकार की है। एक में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक

किया गया है और दूसरी ओर, मिश्रित शैली है जिसमें संस्कृतशब्दों के साथ-साथ अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग बराबर मिलता है तथा कहीं-कही पर अँगरेजी के Education Art of Conversation, Speech, Society, Pulpit, Formality, Standard, Character, शब्द भी तत्सम और तद्भव, दोनों रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। "Simple llving and high thinkiug". "Always endeavour to be really what you would wish to appear" आदि अङ्गरेजी लोकोक्तियों के साथ साथ हिन्दी की कहावतों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। यही नहीं, हिंदी की व्यंजना-शक्ति अधिक बढाने के लिए उन्होंने नए शब्द और मुहावरे भी गढ़े हैं। इस दृष्टि से उनका कार्य वास्तव में सराहनीय है।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

गुप्तजी का जन्म सन १८६५ में एक अग्रवाल वैश्य के घर में हुआ था। आरम्भ में आपने उर्दू तथा अरबी फारसी की शिक्षा पाई और आगे चलकर उर्दू में ही आपने लिखना भी शुरू कर दिया। केवल २१ वर्ष की ही अवस्था में ये "अखबारे चुनार" और "कोहेनूर" नामक पत्र के संपादक बनाए गए। इनको हिन्दी-क्षेत्र में लाने का श्रेय पंडित प्रतापनारायण मिश्र तथा महामना पंडित मदन मोहनजी मालवीय को है। हिंदी सीखते ही वे कालाकाँकर के 'हिंदोस्तान" के संपादक बन गए। आगे चलकर "बंगवासी" के सहकारी संपादक हुए और सन १८६१ में "भारत मित्र" के। आप मृत्यु-पर्यन्त उसका संपादन करते रहे।

हिंदी-सेवा

(१) ऊपर कहा जा चुका है कि गुप्तजी हिन्दी में आने से पहले दो प्रसिद्ध उर्दू पत्रों का संपादन कर चुके थे और अरबी फारसी का उन्होंने अध्ययन भी किया था। फलतः हिंदी-भाषा को अपनाने पर उसे उन्होंने उर्दू की सजीवता प्रदान की।

(२) गुप्तजी ने कुछ समालोचनात्मक लेख भी लिखे थे; समालोचना की ओर हिंदी-लेखकों का ध्यान भी उन्होंने आकर्षित किया।

(३) नए प्रकार के व्यंग्यात्मक राजनैतिक लेख लिखने

की प्रणाली चलाई। ये लेख पं० प्रतापनारायण मिश्र के व्यंग्यात्मक, सामाजिक लेखों का, देश काल की परिस्थिति के अनुकूल संस्कृत रूप समझे जा सकते हैं।

ग्रन्थ और विषय

राजनैतिक विषयों पर लिखे इनके व्यंग्यात्मक लेख जिनका संकलन "शिवशंभू के चिट्ठे" के नाम से हुआ है, बड़े सुन्दर हैं। अतः यह उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ समझा जाना चाहिए। साथ ही, कुछ आलोचनात्मक लेख भी इन्होंने लिखे। ऐसे लेखों में "भाषा की अस्थिरता" आदि दो-एक लेख ही प्रसिद्ध हैं।

शैली

गुप्तजी ने जिस शैली में अपने राजनैतिक और आलोचनात्मक लेख लिखे हैं उसे हम साधारणतः व्यवहारिक परिचयात्मक शैली कह सकते हैं। इस शैली की विशेषता है छोटे-छोटे वाक्यों का इस प्रकार संगठन करना जिसमें भाषा में विशेष प्रवाह रहे और लेख के प्रति पाठकों की रूचि बढ़ती जाय। इस शैली में उर्दू जनित-प्रवाह है। यह स्वाभाविक था और हिंदी के लिए उपयोगी भी। उर्दू की चुलबुलाहट इनकी शैली की दूसरी विशेषता है जो पाठकों का मनोरंजन करती चलती है। मुहावरों का प्रयोग तो उर्दू जानने वाले सब लेखक करते ही हैं। गुप्तजी ने भी उनका सुन्दर उपयोग करके अपनी शैली को सजीव बनाया है। यह उनकी शैली की तीसरी विशेषता है।

गुप्तजी ने अपने लेख "भँगेड़ी शिव शंभुशर्मा" के ही

नाम से अधिक लिखे। यह नाम कल्पित था। 'भँगेड़ी' विशेषण का प्रयोग इसी उद्देश्य से किया गया था जिसमें जान पड़े कि लेखक नशे में बक रहा है। अधिकारियों को उनकी बातों पर गंभीर होकर ध्यान नहीं देना चाहिए; साथ ही पाठकों को मनोरंजन हो। यही इनकी शैली की चौथी विशेषता है। इनका व्यंग्य लक्षित व्यक्ति को सजग और सावधान तो अवश्य कर देता था, परन्तु क्षुब्ध क्रुद्ध या आहत नहीं। इस शैली का एक उदाहरण देखिए—

"नारंगी के रस में बसंती बूटी छानकर शिव संभू शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनन्द ले रहे थे। ख्याली घोड़े की बागें ढीली करदी थीं। वह मनमानी जकंदे भर रहा था। हाथ पांव को भी स्वाधीनता दे दी गई थी। वे खटिया के तूल-अरज की सीमा उलङ्घन करके इधर-उधर निकल गए थे।"

इसमें छोटे-छोटे वाक्यों का सरल प्रवाह है। भाषा भी सरल है; अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है; संस्कृत के तत्सम शब्द इसी प्रकार उनकी भाषा में मिलते हैं। यही उनकी व्यवहारिक परिचयात्मक शैली है जिसमें उन्होंने अपने राजनैतिक लेख लिखे हैं।

उनकी इस शैली में से यदि हम चुलबुलाहट और व्यंग्य की मात्रा कम कर दें तो हमें उनकी व्यवहारिक आलोचनात्मक शैली का ज्ञान हो जायगा। ऊपर कहा जा चुका है कि उन्होंने आलोचना-संबंधी लेख अधिक नहीं लिखे, फिर भी जो दो-चार लेख ऐसे मिलते हैं वे इसी शैली के संयत और संस्कृत रूप में हैं। इस "संस्कृत और संयत" में आशय केवल इतना ही है कि लेखक इन लेखों को लिखते समय अपेक्षाकृत गंभीर हो

जाता था: भंग बूटी छोड़ कर पत्र संपादक बन जाता था। भाषा इस समय भी प्रायः वैसी ही है. मुहावरों का प्रयोग भी जमकर दिलसे ही किया गया है।

भाषा

आरंभ में उर्दू में लिखने के कारण हिन्दी में आने पर गुप्तजी की भाषा में उर्दू शब्दों का रहना स्वाभाविक था। अंग्रेजी के तत्सम और तद्भव शब्दों—नोटो, गवर्नमेंट, डायरेक्टर, लाट साहब—को जब उन्होंने अपनाया तब अरबी-फारसी और संस्कृत के शब्दों की तो बात ही क्या थी?

संक्षेप में, उनकी भाषा सुसंगठित, मुहावरेदार, चलती और चटपटी है। व्यंग्य और विनोद की निराली छटा भी उसमें मिलती है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

द्विवेदीजी का जन्म सन् १८६४ में हुआ था। उनके पिता फौज में नौकर थे। निर्धनता के कारण उनकी शिक्षा की ठीक व्यवस्था न हो सकी। उन्होंने घर पर ही थोड़ी संस्कृत सीखी और स्कूल में अङ्गरेजी का थोडा-बहुत ज्ञान हो गया। कुछ दिन बाद वे बंबई चले गए और तार का काम सीखते रहे। भाग्य से उन्हें जी० आई० पी० रेलवे में २२)रु० मासिक पर तार बाबू की जगह मिल गई। कई वर्ष तक वे इसी जगह पर नौकरी करते और ऊँचा ओहदा पाते रहे।

इसी बीच में उनकी विद्या की ओर रुची बढ़ती गई। उन्होंने संस्कृत, मराठी गुजराती और बँगला का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। हिन्दी और संस्कृत में वे कविता भी करने लगे। इस समय वे रेलवे में चीफ क्लर्क थे और १५०)रु० वेतन पाते थे। एक दिन साहब से कुछ कहा सुनी हो जाने के कारण आपने नौकरी छोड़ दी और "सरस्वती" का संपादन करने लगे।

हिंदी-सेवा

(१) भाषा-सुधार-कार्य—जो लेखक अपनी भाषा में व्याकरणका विशेष ध्यान नहीं रखते थे और मनमाने ढंग से लिखा करते थे उन्हें व्याकरण-सम्मत भाषा लिखने पर विवश किया।

(२) भाषा को विविध विषयों के योग्य बनाना—उस समय

नक उपन्यास, कहानियाँ और सरल हास्यात्मक लेख (Light Literature) ही हिंदी में अधिक लिखे गए थे; पर गम्भीर विषयों की ओर किसी का ध्यान नहीं था। इतिहास, विज्ञान आध्यात्म विद्या, संपत्ति शास्त्र, संगीत, हिंदी भाषा, शासन पद्धति, समाज-तत्व दर्शन, शिक्षा, अनुसंधान, आदि गम्भीर विषयों पर द्विवेदीजी ने स्वयं लेख लिख कर और कुछ पर दूसरों से लिखवा कर योग्य लेखकों का ध्यान इस कमी की ओर दिलाया।

(३) शैली की स्थिरता—उनके समय तक हिंदी की शैली का एक रूप स्थिर नहीं हुआ था। द्विवेदीजी ने सरल और प्रचलित भाषा का प्रयोग कर नवीन साहित्यिक शैली को जन्म दिया।

(४) नए लेखक—विविध विषयों पर दूसरों से लेख लिखा कर तथा अङ्गरेजी की ओर झुके हुए भारतवासियों को अपनी मातृभाषा में लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित करके उन्होंने अनेक लेखकों को जन्म दिया। आजकल के कई प्रसिद्ध लेखक अपने को द्विवेदीजी का शिष्य मानते हैं।

(५) हिंदी-प्रचार—द्विवेदीजी की साहित्य-सेवा का सब से पुनीत आदर्श हिंदी-भाषा का प्रचार कराना था। इसमें उन्हें बड़ी सफलता मिली। हम कह सकते हैं कि एक ओर तो वे लेखक पैदा करते जाते थे और दूसरी ओर पढ़ने वाले भी। आज हिंदी का जो प्रचार है, उसका अधिक श्रेय द्विवेदीजी को ही दिया जाता है।

मुख्य ग्रन्थ

(१) पद्य—कुमार-संभव सार कविता-कलाप (संपादित), सुमन।

गद्य—बेकन-विचार-रत्नावली। नैषधचरित-चर्चा, शिक्षा स्वाधीनता, हिंदी भाषा की उत्पत्ति, हिन्दी-महाभारत, संपत्ति-शास्त्र तथा आलोचनांजली, विदेशी विद्वान, रसज्ञ-रंजन, चरित्र-चित्रण, समालोचना-समुच्चय, सुकवि-संकीर्त्तन, साहित्य-संदर्भ और साहित्य-सीकर आदि लेखों के संग्रह।

विषय

द्विवेदी जी ने हिंदी में प्रधानतः तीन तरह के ही लेख लिखे। पहले तो उन विषयों के जिनका प्रचार हिंदी में बिलकुल नहीं था, यथा संपत्ति शास्त्र, शिक्षा पुरातत्व आदि।

दूसरे प्रकार के लेख, आलोचनात्मक हैं और तीसरे, खोज और गवेषणा संबंधी, जैसे नाट्यशास्त्र, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति आदि।

शैली

उनकी शैली मुख्यतः तीन प्रकार की है—

(१) परिचयात्मक—द्विवेदीजी के प्रादुर्भाव के समय कई विषय ऐसे थे जिन पर न तो लेख ही थे और न जिनकी ओर पाठक का ध्यान ही जाता था। ऐसे विषयों पर पहले-पहल द्विवेदीजी ने ही लेख लिखना आरंभ किया था। इन विषयों को अपनाने का उद्देश्य यह था कि पाठकों की इन विषयों में रुचि हो जाय। अतः तो नए विषयों का प्रचार करने के लिए उन्होंने सरल से सरल भाषा अपनाई और विषय का प्रतिपादन अत्यंत सरल ढंग से किया। शिक्षक की तरह अपने विद्यार्थियों को समझाने के लिए एक-एक बात कई बार दोहराई।

(२) आलोचनात्मक शैली—हिंदी-सेवा-संबंधी द्विवेदीजी

का दूसरा उद्देश्य भाषा और साहित्य में प्रचलित कुरीतियों को दूर करना, अन्य भाषाओं पर लट्टू होकर अपनी भाषा की ओर से उदासीन रहने वालों को उनका कर्तव्य सुझाना और विरोधियों को मुँह तोड़ जवाब देना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखे उनके अधिकांश लेख आलोचनात्मक हैं। यही कारण है कि इस शैली में कहीं तो वे शिक्षा देते दिखाई देते हैं, कहीं फटकारते और कहीं व्यंग्यपूर्ण आक्षेप करते। उद्देश्य पुनीत होने के कारण उनकी यह शैली बहुत ओजपूर्ण और सुन्दर है। कहीं-कहीं इसमें हास्य और व्यंग्य भी मिलता है।

(३) गवेषणात्मक शैली—द्विवेदीजी ने जहां गँभीर साहित्यिक विषयों का विवेचन किया है, वहां हमें आलोचनात्मक या व्यंग्यात्मक शैली की चुलबुलाहट, मार्मिकता या चुटीलापन नहीं मिलता। इस शैली का प्रयोग इन्होंने क्लिष्ट या विवादात्मक विषयों को जन-साधारण को समझाने के लिए किया है फलतः भाषा सरल है, वाक्य छोटे हैं और प्रतिपादन प्रणाली सुलझी हुई है। इसका दूसरा रूप वह है जिसमें भाषा विशुद्ध हिन्दी है।

भाषा

द्विवेदीजी सरल से सरल भाषा लिखने के पक्ष में थे। साथ ही, न वे प्रचलित संस्कृत शब्दों का विरोध या बहिष्कार करते थे और न अरबी-फारसी का ही। इनकी भाषा में सजीवता है और स्वाभाविकता भी। वे प्रायः कहा करते थे—संस्कृत के कठिन तत्सम शब्द क्यों लिखे जायँ? 'घर' शब्द क्या बुरा है जो 'गृह' लिखा जाय? 'कलम' क्या बुरा है जो 'लेखनी' लिखी जाय? 'ऊँचा' क्या बुरा है जो 'उच्च' लिखा जाय? उर्दू को वे भिन्न भाषा नहीं समझते थे और अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों को हिंदी का ही मानते थे।

संक्षेप में, द्विवेदीजी एक ओर तो हिंदी-भाषा को सरलतम रूप देने के पक्ष में थे, और दूसरी ओर उनका यह विचार था कि यदि एक भाषा का देश में प्रचार होजायगा तो देश में राष्ट्रीयता या जातीयता की भावना की उत्पत्ति सरलता से हो सकेगी। उनका तीसरा उद्देश्य यह था कि हिंदी भाषा में गंभीर से गंभीर और गूढ़ से गूढ़ विषयों को सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता आ जायगी। वे हिंदी संसार को यह सुना देना चाहते थे कि हिंदी भाषा की अभिव्यंजन-शक्ति किसी स्वतंत्र भाषा से कम नहीं है। और उसमें जो कमी है भी, वह प्रचलित शब्द अपना लेने से शीघ्र ही दूर की जा सकती है।

डाक्टर श्यामसुन्दर दास

मातृभाषा के प्रचारक, विमल बी० ए० पास।
सौम्य, शील-निधान, बाबू श्यामसुन्दर दास॥

परिचय—बाबूजी का जन्म सन् १८७५ में बनारस में हुआ था। इंटरमीडिएट पास करने के बाद ही अपने कुछ मित्रों की सहायता से आपने सन् १८९३ में काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना की थी। सन १८९७ में आपने बी० ए० पास किया और कुछ समय तक सेंट्रल हिंदू कॉलेज, बनारस में अँगरेजी के अध्यापक रहे। इसके पश्चात कुछ वर्ष तक इरिगेशन डिपार्टमेंट, शिमला, और महाराजा काश्मीर के प्राइवेट दफ्तर में काम किया। तत्पश्चात् कालीचरण हाई स्कूल, लखनऊ में हेडमास्टर होकर आए और कई वर्ष तक काम करते रहे। यहां से रिटायर होकर काशी-हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने। अगस्त, १९४५ में आपका स्वर्गवास हुआ। आपको काशी-विश्वविद्यालय ने डी० लिट० तथा सरकार ने राय बहादुर की उपाधि देकर सम्मानित किया था।

हिंदी-सेवा

(१) हिंदी पर बाबूजी का बड़ा ऋण है। आपका सबसे महत्वपूर्ण कार्य नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना करना है। हिंदी की आधुनिक उन्नति के लिए जितना प्रयत्न इस सभा ने किया है उतना शायद किसी भी दूसरी संस्था ने नहीं किया

और "इस सभा की सारी समृद्धि और कीर्ति बाबूजी के त्याग और सतत परिश्रम का फल है।"

(२) प्राचीन हिंदी कवियों के ग्रन्थों की खोज और उनका प्रकाशन दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इससे हिंदी-साहित्य का इतिहास लिखने वालों के लिए सामग्री प्रस्तुत हुई।

(३) वर्षों के प्रयत्न के बाद "हिंदी-शब्द-सागर" और "हिंदी वैज्ञानिक कोष" का निर्माण कराना। इस कार्य में इन्हें अन्य विद्वानों से भी बड़ी सहायता मिली।

(४) "भाषा-विज्ञान और साहित्यालोचन" आदि गंभीर विषयों पर पुस्तकें लिखना।

मुख्य ग्रन्थ

मौलिक—हिंदी-भाषा और साहित्य, रूपक-रहस्य, साहित्यालोचन भाषाविज्ञान, गोस्वामी तुलसीदास, भारतेंदु हरिश्चन्द्र।

संपादित—हिंदी-शब्द सागर, वैज्ञानिक कोष, हिंदी-कोविद "रत्नमाला" (दो भाग), "मनोरंजन पुस्तकमाला"।

विषय

आपने "भाषा विज्ञान" और "साहित्यालोचना" जैसे गूढ़ गंभीर और मननशील विषयों पर ही प्रायः ग्रन्थ लिखे हैं। और साहित्य के साधारण विद्यार्थियों को यह विषय समझाना ही आपका मुख्य उद्देश्य रहा है।

शैली

बाबूजी की शैली प्रायः गंभीर विचारात्मक ही है। विषय के गंभीर रहने के कारण आपने छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है। भाषा कुछ संस्कृत-प्रधान होते हुए भी स्पष्ट और

बोधगम्य है। गवेषणात्मक निबन्धों की उनकी शैली में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है।

बाबूजी की शैली की एक विशेषता और है। काव्योपम शृङ्गार या सजावट उनकी शैली में नहीं है। हाँ, विषय को स्पष्ट करने के लिए रूपक आदि का सहारा उन्होंने अवश्य लिया है। आरंभ से वे शिक्षक रहे हैं। अतः विषय को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर के विद्यार्थियों को समझा देना उनका स्वभाव ही रहा है। "जैसे" का बार-बार प्रयोग करके, स्थान-स्थान पर उदाहरण देकर वे अपने विषय की विवेचना करते हुवे पाठकों को समझाते हैं और अँत में "सारांश यह है" या "संक्षेप में" आदि कहकर उन्होंने अपने कथन का निष्कर्ष कुछ शब्दों में रख दिया है।

बाबूजी की शैली में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। इसका कारण प्रधानतः विषय का गंभीर होना है।

भाषा

गंभीर विषयों पर लिखने के कारण आपकी भाषा प्रायः गंभीर होगई है। यह स्वाभाविक ही है। कारण भाषा प्रायः विषय के अनुकूल ही हुआ करती है।

संस्कृत के शब्दों को तत्सम और तद्भव दोनो रूपों में लिखा है। प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी आपने किया है। उनकी भाषा का प्रतिनिधि स्वरूप नमूना यहां दिया जाता है:—

जब कवि की सब भावनाएँ एक मुख होकर जागृत हो उठती हैं तब कवि का हृदय स्वतः ही भावुक उद्गारों के रूप में प्रकट होने लगता है। इस अभिव्यक्ति के लिए न कवि की

ओर से प्रयत्न की आवश्यकता होती है और न कोई बाहरी रुकावट ही उसे रोक सकती है।

उर्दू के शब्दों को बाबूजी ने अपनाया है परन्तु तभी जब वे भावों को स्पष्ट करने में सहायक हुए हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे संस्कृत के अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों को समझाने के लिए कभी-कभी उर्दू, अरबी-फारसी अङ्गरेजी आदि भाषाओं के शब्द का प्रयोग, बिना स्वयं जाने-बूझे ही कर जाते हैं।

अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को अपनाने के संबंध में उनका आदर्श है, हिंदी को खूब व्यापक बना लेना। संस्कृत शब्द उन्होंने इसी उद्देश्य से अपनाए और अरबी-फारसी के उर्दू भाषा में प्रचलित शब्द भी। संस्कृत के "कार्य्य", "धर्म्म", "सौंदर्य्य" आदि शब्दों के ड्योढ़े अक्षर को सरल करके कार्य, धर्म, सौंदर्य, लिखने लिखाने का प्रयत्न किया और दूसरी ओर "सङ्ग्रह" "अञ्जन", "घण्टा", "फन्दा" आदि शब्दों का पंचम वर्ण उड़ा कर अनुस्वार से काम लेना शुरू किया। उर्दू के क़लम, क़ानून, क़वायद, तूफ़ान आदि शब्दों के नीचे की बिंदी उड़ा कर और उनका उच्चारण बदल कर उन्हें बाबूजी ने हिंदी भाषा में मिला लिया है। जिन प्रांतों में उर्दू अधिक बोली जाती है, वहां तो यह परिवर्तन खटकता है पर अन्य में नहीं। हमारे बालक जो आगे चलकर हिंदी पढ़ेंगे उन्हें यह बात नहीं खटकेगी। उनके ऐसे शब्द हिंदी भाषा की संपत्ति के समान ही होंगे। अतः बाबूजी के इस प्रयत्न का महत्व स्पष्ट ही है।

पंडित रामचंद्र शुक्ल

परिचयः—शुक्ल जी का जन्म सन् १८८४ में हुआ था। बाल्य काल में आपने संस्कृत की शिक्षा पाई। १९०१ में आपने एंट्रेंस की और दो-तीन वर्ष बाद एफ० ए० की परीक्षा पास की। तब आप मिशन स्कूल, मिर्जापुर में अध्यापक हो गए। सन् १९०८ में काशी-नागरी-प्रचारणी-सभा में आप "हिंदी-शब्द-सागर" के सहकारी संपादक बनाए गए। ८-९ वर्ष तक आपने नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका का संपादन भी किया। इसके पश्चात काशी-हिन्दू-विद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर हो गए और वहीं हिंदी-विभाग के अध्यक्ष होकर काम करते रहे। शुक्लजी तथा डा० श्यामसुन्दरदास जी की मृत्यु से हिन्दी-साहित्य को जो हानि हुई है वह वर्णनातीत है।

हिंदी-सेवा

(१) शुक्लजी ने क्रोध, करुणा, उत्साह, घृणा, श्रद्धा आदि मनोविकारों पर विश्लेषणात्मक लेख लिखे हैं। हिंदी में इनके पहले भी ऐसे लेख बहुत कम लिखे गए थे और इस समय भी अधिक नहीं लिखे गए हैं। इन लेखों के महत्व का प्रधान कारण यही है।

(२) शुक्लजी के आदर का प्रधान कारण उनकी समालोचनाएँ हैं। सूर, तुलसी और जायसी पर लिखी हुई इनकी आलोचनाएँ अत्यंत उच्चकोटि की हैं। वास्तव में शुक्लजी के पहले, हिंदी में, गंभीर और मननशील समीक्षा-साहित्य का जो अभाव था, उसकी पूर्ति करने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है।

(३) आज से लगभग ३० वर्ष पहले शुक्लजी "हिंदी-शब्द-सागर" के सहायक संपादक बनाए गए थे। उसके प्रधान संपादक बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने "शब्द सागर" की भूमिका में लिखा है—"हिंदी-शब्द-सागर" को वर्तमान रूप देने का अधिकांश-श्रेय शुक्लजी को ही है।

(४) शुक्लजी ने कविता भी की है। इनमें प्रकृति का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है।

(५) आलोचना के साथ-साथ शुक्लजी ने हिंदी-साहित्य का इतिहास भी लिखा है। इस पर हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग ने ५००) रु० का पुरस्कार दिया है।

मुख्य ग्रन्थ

जायसी, सूर और तुलसी पर लिखी गंभीर समालोचनाएँ, काव्य में रहस्यवाद, हिंदी साहित्य का इतिहास, चिंतामणि (लेखों का संग्रह) और बुद्ध चरित्र (काव्य)।

विषय

शुक्लजी के गद्य ग्रन्थ मुख्यतः दो विषयों पर हैं—
(१) साहित्यिक, विचारात्मक तथा आलोचनात्मक प्रबन्ध।
(२) मनोविकार-संबंधी भावात्मक लेख।

शैली

सुप्रसिद्ध आलोचक बफन ने एक बार कहा था—Style is the man. इसका भाव यह है कि शैली से हमें लेखक के व्यक्तित्व के विषय में बहुत कुछ मालूम हो सकता है। बफन का यह कथन शुक्लजी के लिए नितांत सत्य है। उक्त विषयों के अनुसार शुक्लजी की शैली मुख्यतः दो प्रकार की है—(१) समी शैली (२) भावात्मक शैली।

समीक्षा शैली—इनकी समालोचना-शैली गंभीर, संयत, और मार्मिक है। वाक्य प्रायः छोटे-छोटे हैं। विषय को शिष्ट और सरल ढंग से समझाया गया है। भाषा इनकी संस्कृत-प्रधान है; व्यावहारिक भाषा का प्रयोग इन्होंने गंभीर विषयों पर लिखते समय कम किया है।

भावात्मक शैली—इनकी आलोचनात्मक शैली से कुछ भिन्न है; इसमें वाक्य तो वैसे ही छोटे-छोटे हैं—जिनसे विषय सुबोध और बोधगम्य हो जाता है—शब्द योजना में भी विशेष अन्तर नहीं है, परन्तु विषय की स्वच्छन्दता के कारण भाषा के प्रचलित और व्यावहारिक रूप को ही अपनाया गया है।

हास्य का पुट—शुक्लजी की कविताओं में जैसी मीठी चुटकियाँ मिलती हैं। वैसी ही कहीं-कहीं गद्य में भी गंभीर विवेचना के साथ-साथ "इनके हास्य की मधुर कलियाँ खिल पड़ती हैं।" इन्होंने आलोचनात्मक शैली में तो मुहावरों का प्रयोग अधिक नहीं किया है, परन्तु शिष्ट और मार्मिक परि-हास के साथ इनका प्रयोग अत्यंत सुन्दर ढंग से हुआ है। इसके दो-एक उदाहरण—

(१) हवा से खेलने वाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम से कम सुनी तो बहुतों ने होंगी; चाहे उनकी जिंदा दिली की कद्र न की हो।

(२) बिहारी की नायिका जब साँस लेती है, तब उसके साथ चार कदम आगे बढ़ जाती है। घड़ी के पेंडुलम की-सी दशा उसकी रहती है।

भाषा

शुक्ल जी का प्रयत्न प्रायः यही रहा है कि हिंदी भाषा को

बाबू जयशंकर प्रसाद

परिचय—बाबू जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् १८८९ में एक प्रतिष्ठित व्यापारी कुल में हुआ था। बाल्यकाल में इनकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध स्कूल में नहीं किया गया; आपने अपने घर पर ही शिक्षा पाई। विद्याध्ययन से प्रसादजी को विशेष रुचि थी। अतः शीघ्र ही आप संस्कृत, फारसी, हिंदी, अँगरेजी पढ़ गए। संस्कृत से इन्हें विशेष प्रेम था, और भारतीय संस्कृति के वे बड़े पक्षपाती थे। इसी से, अब तक, प्राचीन संस्कृत और साहित्य का आप अध्ययन करते रहे। बँगला भी आपने सीखी थी। हिंदी से तो आपको स्वाभाविक स्नेह था और अपने व्यापार की देख भाल करते रहकर आप हिंदी-साहित्य की भी अमूल्य सेवा करते रहे।

हिंदी-सेवा

(१) प्रसादजी की बहुमुखी प्रतिभा के कारण हिंदी के प्रायः सभी विद्यार्थी इनसे परिचित हैं। इन्होंने हिंदी-साहित्य के दो प्रधान अंगों—नाटक और कविता—में मौलिकता का समावेश किया। इनका विषय नया था, शैली नई थी, रचनादर्श नया था।

(२) प्रसादजी ने नाटक-साहित्य के रिक्त भण्डार को भरने का सुन्दर प्रयत्न किया। हिंदी में, इनके पहले, मौलिक नाटक एक-दो-ही लिखे गए थे और उनकी शैली, चरित्र-चित्रण आदि में भी विशेष नवीनता नहीं थी। प्रसादजी ने इस

इसी को पूरा किया और कई सुन्दर सुन्दर नाटक लिखे। इनके नाटकों में भारतीय संस्कृति का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

(३) प्रसादजी आधुनिक रहस्यवादी कविता की नवीन-धारा के प्रवर्त्तक भी माने जा सकते हैं। द्विवेदी काल के, "सरस्वती" के कवियों के ढंग पर कविता न करके इन्होंने प्रधानतः यौवन और प्रेम विषयक बड़ी सुन्दर भावात्मक कविताओं की रचना की जिनके कारण वे विश्व-विद्यालयों के नवयुवक विद्यार्थियों को विशेष प्रिय हैं। रहस्यवादी कवियों में तो इनकी तुलना विश्व-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्र से की जाती है।

(४) चौथी बात है इनकी साहित्यिक शैली जिसके कारण इनकी कहानियाँ भी गद्य-काव्य का सा आनन्द देती हैं।

मुख्य-ग्रन्थ

(क) नाटक—सज्जन, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ।

(ख) काव्य—प्रेम-पथिक, कानन-कुसुम, झरना, लहर, कामायनी, आँसू।

(ग) कहानी संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, नवपल्लव, आँधी, आकाश दीप।

(घ) उपन्यास—कंकाल और तितली।

विषय

प्रसादजी ने गंभीर, विवेचनात्मक या भावात्मक लेख न लिख कर गद्य में नाटक, उपन्यास और कहानियाँ ही लिखी हैं जिनका उद्देश्य, जन-साधारण की दृष्टि में मनोरंजन करना ही

होता है। परन्तु, वास्तव में, प्रसादजी की रचनाएँ केवल मनोरंजन और विनोद की दृष्टि से न लिखी जाकर, अध्ययन के लिए लिखी गई हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों में संघर्ष के चित्रों के साथ-साथ, गवेषणात्मक और भावात्मक स्थल भी हैं। इसका कारण यह है कि अपने नाटकों के लिए भारतीय इतिहास का प्रसादजी ने वह युग चुना है जो गंभीर और उनके प्रादुर्भाव के समय तक कुछ अनिश्चित-सा था। इसके अतिरिक्त नाटकों में घात-प्रतिघात तथा अन्तर्द्वंद के लिए विस्तृत क्षेत्र भी उन्हें मिल जाता है।

लेखक की शैली पर उसकी रुचि-विशेष का प्रभाव पड़ता है। अन्य लेखकों की अपेक्षा प्रसादजी के लिए यह बात अधिक सत्य है। उनकी शैली पर उनके गहरे दार्शनिक विचारों का प्रभाव तो एक ओर पड़ा है और दूसरी ओर, उनके कवि-हृदय की सहज भावुकता की पुट दिखाई देती है। ये उनकी बातें कहानियों और उपन्यासों के लिए भी प्रायः सत्य ही हैं।

शैली

प्रसादजी कवि पहले हैं पीछे और कुछ। यही कारण है कि उनकी समस्त कृतियों में काव्यात्मक चमत्कार वर्तमान है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए बड़ी सुन्दर उक्तियों का संग्रह करते वे दिखाई देते हैं। ऐसा करने से वर्णन में एक विशेष प्रकार की रोचकता आजाती है।

यह चमत्कार प्रसादजी की रचनाओं में प्रायः सर्वत्र मिलता है। इन उक्तियों में चमत्कार तो होता ही है, साथ ही, एक प्रवाह भी रहता है। इसका सम्बन्ध पात्र के हृदय में उत्पन्न दुख, क्षोभ, ग्लानि हर्ष आदि मनोभावों की मात्रा के अनुरूप

होता है। ऐसे स्थलों पर भाव-प्रकाशन-शैली बहुत ही स्वाभाविक है; वाक्य छोटे-छोटे हैं, भाषा में सहज प्रवाह भी है। प्रायः अन्तर्द्वंद-प्रधान नाटकों में भावात्मक शैली के ऐसे स्थल बहुत अधिक रहते हैं।

"सेनापति! देखो, उन कायरों को रोको। उनसे कह दो कि रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिंता नहीं, एक बार इन दस्युओं को बतला देना होगा कि भारतीय लड़ना भी जानते हैं। बादलों से पानी बरसने की जगह वज्र बरसें, सारी गजसेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथी हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें; परन्तु एक पग भी हटना पर्वतेश्वर के लिए असंभव है। धर्मयुद्ध में प्राण-भिक्षा मांगने वाले भिखारी हम नहीं। जाओ उन भगोड़ों से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रुकने को कहो। कहो कि मरने का क्षण एक ही है। जाओ।"

इसी प्रकार की भावपूर्ण शैली प्रसाद जी की मुख्य शैली है, जिसमें कहीं-कहीं रुचि और विषय के कारण कुछ अन्तर हो गया है। इस शैली की चार मुख्य विशेषताएँ हैं—

(१) छोटे-छोटे वाक्यों में सुन्दर प्रवाह।

(२) स्थान-स्थान पर प्रकृति का इस प्रकार वर्णन करना कि नर-नारी प्रकृति के अङ्ग जान पड़ते हैं और इसके बड़े प्रेमी हैं।

(३) शब्दों के द्वारा पूरा पूरा चित्र खींच देना।

(४) नाट्यात्मक कथोपकथन रखना जैसे—इतने में ध्यान आया उस धीवर बालिका का।

हास्य और व्यंग्य—कहीं-कहीं पर प्रसादजी की रचनाओं में

सुन्दर व्यंग्य भी मिलता है जो विशेष चुटीला और मार्मिक न होकर सरस और मीठा है।

मुहावरों का प्रयोग—प्रसादजी की भाषा में मुहावरों का प्रयोग बहुत कम है। फिर भी इनकी शैली में सुन्दर प्रवाह और काव्य की छटा बराबर मिलती है।

भाषा

प्रसादजी की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है और अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। हाँ, जहाँ लेखक ने साधारण भाव प्रवाह के अनुकूल ही भाषा लिखी है, वहां संस्कृत की तत्समता अधिक नहीं है। अस्तु, संक्षेप में, प्रसादजी की भाषा मुख्यतः दो प्रकार की है—

(१) संस्कृत-प्रधान—इस प्रकार की भाषा विशेष स्थलों पर ही मिलती है जहां मनोभावों का द्वन्द्व चित्रित करते-करते लेखक स्वयं भावमय हो जाता है। तल्लीनता की इस अवस्था में प्रसादजी की भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त है।

(२) व्यावहारिक भाषा—जिसमें अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों का अभाव तो अवश्य है परन्तु संस्कृत की प्रधानता अखरती नहीं। इस भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों के कारण बड़ा प्रवाह और रस है। उदाहरण के लिए—

"गला सूख रहा है,-साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ इतना।" कहते-कहते वह व्यक्ति धर्म से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्मांड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहां से आई। उसने जल दिया, मगल के प्राणों

नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।" घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

—"ममता" शीर्षक कहानी

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि दार्शनिक विवेचना, आध्यात्मिक गम्भीरता और मनोभावों की व्यंजना के कारण प्रसादजी की संस्कृत-शब्दावली-प्रधान भाषा विषय के अनुकूल ही है तथापि उपन्यासों, नाटकों और कहानियों के सभी पात्रों का एक ही सी परिष्कृत, अलंकृत और सुसंगठित भाषा में बात करना नाटकीय कथोपकथन की दृष्टि से कुछ अस्वाभाविक लगता है।

श्रीयुत प्रेमचंदजी

परिचय—बाबू प्रेमचंदजी का असली नाम धनपतराय था। इनका जन्म सन् १८८० में एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल में हुआ था। आरंभ में इन्होंने उर्दू-फारसी की शिक्षा पाई। सन् १८९९ के लगभग इन्होंने मैट्रीकुलेशन पास किया और ये एक स्कूल में अध्यापक हो गए। कुछ वर्ष बाद इन्होंने बी०ए० पास कर लिया।

उर्दू में सन् १९०१ के लगभग ही इन्होंने लिखना शुरू कर दिया था; अपने समय के ये उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक थे और आपकी कहानियां उर्दू के सर्वश्रेष्ठ मासिक-पत्र 'जमाना' में आदर से स्थान पाती थीं। लगभग सन् १९१५ से ये अपनी उर्दू कहानियां और उपन्यासों का रूपांतर हिंदी में करने-कराने लगे। यों, इन्होंने हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। लगभग २० वर्ष तक इन्होंने हिंदी में कहानियां और उपन्यास लिख कर अक्षय कीर्ति प्राप्त की। 'मर्यादा,' 'माधुरी' का संपादन भी किया। तत्पश्चात् सरस्वती-प्रेस, बनारस की स्थापना करके 'हंस' (मासिक) और 'जागरण' (साप्ताहिक) का संपादन किया। सिनेमा में भी ये कुछ दिन काम करने गए थे।

साहित्य-सेवा

(१) प्रेमचंदजी ने लगभग ४०० कहानियां लिखी हैं। इनकी कहानियों का उपन्यासों से अधिक प्रचार है और उनमें उपन्यासों से अधिक मार्मिकता भी है जो हृदय की चुटकी लेती हैं। संपूर्ण जीवन की समस्त परिस्थितियों की मार्मिक विवेचना

इनकी कहानियों में मिलती है और जिन कहानियों में हर्ष-शोक, सुख-दुःख, ममता कर्तव्य आदि विपरीत भावों का द्वन्द्व है, वे बड़ी उच्चकोटि की हैं।

(२) हिंदी के, वास्तव में, यही सर्व प्रथम साहित्यिक उपन्यास लेखक हैं और मौलिकता की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है। इनके उपन्यास हमारे साहित्य की स्थायी संपत्ति हैं।

(३) प्रेमचंदजी ही हिंदी के ऐसे प्रथम कहानी और उपन्यास लेखक हैं जिनकी साहित्यिक और मौलिक कृतियों का उर्दू, मराठी, गुजराती, जापानी, बँगला, अङ्गरेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अब तक हमने इन भाषाओं की कहानियों और उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया था। कह सकते हैं कि प्रेमचंदजी ने इस ऋण को अदा करने की ओर कदम बढ़ाया था।

(४) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी हिंदी के लेखकों में इनका विशेष स्थान है। इनके सब पात्र स्वच्छंद जीवित नर नारी हैं। जान पड़ता है कि उनको इन्होंने बोलने-चलने-फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है और जो वे करते हैं उसी का चित्र ये खींचते जाते हैं।

(५) अन्तिम बात यह है कि हमारे प्रेमचंदजी जनता के साहित्यकार हैं। उनके प्रधान उपन्यासों और अधिकांश कहानियों का विषय उन दीन-हीन, निर्धन निरीह कृषकों की ग्राम-समस्या है जिनका संबंध समाज और राजनीति, दोनों से है। उन्होंने पूँजीपतियों का गुण गान न करके इन दीन-दुखियों को अपनाया है, इससे हमें उनकी विशाल हृदयता का पता हो सकता है। जिस दिन हमारे किसान शिक्षित होंगे उसी दिन प्रेमचंदजी का वास्तविक मूल्य हमें मालूम होगा; तभी वास्तव

में उनका सम्मान होगा, क्योंकि उन्हें प्रेमचंदजी की कृतियों में वह चीज मिलेगी जो हिंदू-समाज को तुलसीकृत रामायण में मिलती है।

मुख्य ग्रन्थ

(क) उपन्यास—सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, ग़बन, कर्मभूमि, गोदान।

(ख) कहानी-संग्रह—प्रेम-द्वादशी, प्रेम-पूर्णिमा, प्रेम-पचीसी प्रेम प्रसून, नवनिधि, सप्त-सरोज।

(ग) नाटक—कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी।

विषय

प्रेमचंदजी ने केवल कहानियां और उपन्यास ही अधिक लिखे हैं। अतः इनकी शैली में विशेष अन्तर नहीं है।

शैली

आरम्भ में प्रेमचंद जी उर्दू में लिखते थे और उर्दू के प्रसिद्ध लेखकों में गिने जाते थे। हिंदी-क्षेत्र में आने पर उन पर उर्दू शैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। परंतु उर्दू शैली के प्रभावित होने पर भी उन्होंने हिंदी शैली की साहित्यिक विशेषताओं के अपनाने का प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुए। कहा जा सकता है कि भाषा की जो विशुद्धता और साहित्यिकता, नवीनता और गंभीरता हमें प्रसादजी की रचनाओं में मिलती है, वह प्रेमचंदजी की कृतियों में अधिक नहीं; परंतु मनुष्य जीवन की सरल व्यंजना करने के लिए इन्होंने जिस शैली को अपनाया, उसमें प्रायः वही विशेषताएँ हैं, जिनके कारण कविवर मैथिलीशरण जी की कविता लोकप्रिय है।

तात्पर्य यह है कि उनकी शैली में प्रायः सर्वत्र एक प्रकार की सरलता है जो पाठकों का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर ही लेती है। भावावेश के कारण इस शैली में विशेष सजीवता और बल आ जाता है, परंतु सरलता वैसी ही बनी रहती है। जहां कोमल भावों की व्यंजना की गई है वहां भाषा मधुर और कोमल हो गई है; जहां क्रोध, आवेश अथवा किसी प्रकार की उग्रता आदि भाव प्रकट किए गए हैं वहां शैली भी उग्र और ओज-पूर्ण हो गई है; जहाँ तिरस्कार, अवहेलना अथवा अपमान-संबंधी भाव स्पष्ट किए गए हैं, वहां शैली में शब्दों का चयन इस ढंग का मिलता है जिससे घृणा का भाव स्पष्ट हो जाय। इनकी शैली का जीता-जागता स्वरूप और उसकी विशेषताओं का पता इनके पात्रों के कथोपकथन में ही देखने को मिलता है। उदाहरण देखिए—

रानी जाह्नवी के हृदय में सोफिया के प्रति स्नेह का संचार होता है तब वह कहती है—

बेटी, तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया था, मैंने तुम्हें पहचाना न था। मुझे सब मालूम है बेटी! सब सुन चुकी हूँ। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे मालूम न था। आह! अगर पहले से जानती।

—रंग भूमि पृ० ७४२

परन्तु जब रानी को क्रोध आ जाता है वह उसी सोफिया से कहती है—

मैं राजपूतनी हूँ, मरना भी जानती हूँ और मारना भी जानती हूँ। इसके पहिले कि मैं तुम्हें विनय से पत्र-व्यवहार करते देखूँ मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगी।

—रंग भूमि पृ० २५८

इस शैली में उन्होंने अलंकारों की योजना भी की है। इससे भी शैली में विशेष सजीवता आ जाती है। उदाहरण के लिए—

(१) गंगाजली ने उन्हें पकड़ने को हाथ फैलाये, पर दोनों हाथ फैले ही रह गये, जैसे किसी गोली खाकर गिरने वाली चिड़िया के दोनों पंख खुले रह जाते हैं।

—सेवासदन पृ० १४

(२) आनंद, महीनों चिंता के बंधन में पड़े रहने के बाद आज जो छूटा तो छूटे हुए बछड़े की भांति कुलाचें मारने लगा।

कर्मभूमि पृ० १०५

वाक्य इस शैली के प्रायः छोटे-छोटे हैं जो "गंभीर घाव" करते हैं। एक वाक्य दूसरे से निकल कर इस शैली को और भी गठित कर देता है। भाषा तो ऐसे स्थलों की, प्रचलित होती ही है।

हास्य और व्यंग्य का पुट—मीठे व्यंग्य की पुट उनकी रचनाओं में बराबर मिलती है। उनका व्यंग्य कभी इतना चुटीला नहीं होता जो किसी को कष्ट पहुँचावे, उसमें सर्वत्र एक मिठास रहती है जो मनोरंजन के साथ-साथ हमारी आँखें भी खोलती है। हास्य और व्यंग्य का मिश्रित पुट इस अवतरण को कैसा मार्मिक बना देता है। वकील साहब अपने खर्चे में कमी करने की चिंता में हैं। परेशान होते-होते एक विचार सूझा कि घोड़े की रातिब में कुछ कमी करदी जाय। इस पर उनकी स्त्री, सुभद्रा व्यंग्य करती हुई कहती है—

हां, यह दूर की सूझी। घोड़े को रातिब दिया क्यों ही

बाबू राय कृष्णदास

परिचय—आपका जन्म सन् १८९२ में एक प्रतिष्ठित अग्रवाल वैश्य के यहाँ हुआ था। इनके पिता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के भाई—उनकी बुआ के पुत्र—थे। जब यह केवल १२ वर्ष के थे तभी इनके पिता स्वर्गवासी हो गए थे। साहित्य-सेवा करने योग्य साहित्य प्रतिभा का परिचय इन्होंने अपनी बाल्यावस्था में ही दे दिया था। नौ वर्ष की अवस्था में इन्होंने कविता करनी आरंभ करदी थी। पन्द्रह वर्ष की छोटी अवस्था में इन्होंने "दुलारे रामचन्द्र" नामक एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया, जो पूरा न हो सका। कवीन्द्र-रवींद्र की "गीतांजलि" के प्रकाशन के उपरांत इन्होंने उसी ढंग की एक स्वतन्त्र गद्य-कृति "साधना" नाम से लिखी। कविताओं और गद्य-गीतों के अतिरिक्त सन् १९१७ से आपने कहानियाँ लिखने की ओर ध्यान दिया है। इस क्षेत्र में भी बँगाल का प्रभाव स्पष्ट है।

हिंदी-सेवा

(१) राय साहब का क्षेत्र वास्तव में साहित्य न होकर भारतीय कला है। वे कला कोविद हैं और इस क्षेत्र में हिंदी साहित्यसेवियों में अद्वितीय हैं। अपने इस क्षेत्र में भारतीय-कला की रक्षा का स्तुत्य प्रयत्न उन्होंने किया है।

(२) गद्य-काव्य और कहानी-लेखक की दृष्टि से भी उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

मुख्य ग्रंथ

(क) गद्य गीत-संग्रह—साधना, छायापथ और प्रवाल।

(ख) कविता—"भावुक" (संग्रह)

(ग) कहानी-संग्रह—अनाख्या; सुधांशु।

विषय

हम ऊपर कह चुके हैं कि एक ओर तो इनकी रचनाएँ भावात्मक हैं और दूसरी ओर इनकी रुचि कलाकी ओर झुकी हुई है। इसी से यद्यपि इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक सभी प्रकार के कथानक लेकर अपनी कहानियाँ लिखी हैं तथापि उनमें कथा को—और उतनी ही कथा को—अपनाया है जिससे कथानक सरल होकर भाव-स्पष्टतया और रस के उद्रेक में सहायक हो सके।

शैली

राय साहब ने प्रायः एक ही शैली में अपनी कहानियाँ और गद्य-काव्य लिखे हैं। वस्तुतः उनकी कहानियां गद्य-काव्य का-सा आनंद देती हैं। वाक्य इसमें छोटे-छोटे हैं तथा शब्दों में संकेत मात्र किया है। स्थान-स्थान पर यह पदावली भाव की सरलता के अनुरूप मधुर होगई है। जान पड़ता है, कवि शिशु-सा भोला बनकर प्रकृति के प्रांगण में घूम-घूम कर एक-एक मनोहर वस्तु की ओर चकित भाव देख कर कथा-रहस्य जानने की जिज्ञासा कर रहा है।

परन्तु उनकी कृतियों में सर्वत्र ऐसी सरलता नहीं दिखाई देती उनके कथन का चमत्कार-पूर्ण ढंग और है जिसमें वे एक बात को सीधे-सादे ढंग से न कह कर आलंकारिक रूप देते हैं। "सायंकाल का समय था" न कह कर वे कहते हैं दिनमणि

अपने करों से स्निग्ध कपोलों को लाखों रत्नों से आभूषित कर रखा था।" (छायापथ पृ० ४०) इसी भांति, "क्रमशः संध्या हुई और सूर्य उससे सानुराग विदा हुए।" के हाथ से यह भी कहते हैं, "प्रतीची ने स्वर्ण और नीलिमा के धूप-छाँह का उत्तरीय ओढा।" (छायापथ पृ० ४०)।

उनकी शैली की दो मुख्य विशेषताएँ है—

(१) अलंकारों का इस सुन्दर ढंग से प्रयोग करना जिससे भावों में विशदता और स्पष्टता तो अवश्य आ जाय, परन्तु दुरुहता या क्लिष्टता न आने पावे। दो-एक उदाहरण देखिए—

१—खेतिहर अपने आमोद में मग्न थे—चरै हरित तृन बलि-पसु जैसे। "सुधांशु"।

२—महारानी उसी शक्ल में धड़धड़ाती हुई राजसभा में उतर आई—पहाड़ी प्रवाह के वेग में दौड़ने वाली शिला की तरह।—सुधांशु।

(२) दूसरी विशेषता है "प्रसादजी" की तरह भावोद्वेग में वाक्य विन्यास में उलट फेर कर देना। प्रायः ऐसा करने से वाक्य प्रभावोत्पादक हो जाते हैं—

१—उत्कट इच्छा होती है वहां चलने की।

२—यों वह अनन्तविभूति दिखलाता है, पर रहता है वह ज्यों का त्यों निर्लिप्त।

भाषा

उनकी भाषा शुद्ध और प्रचलित हिंदी ही मानी जानी चाहिए जिसमें उर्दू के व्यवहारिक शब्दों का बहिष्कार नहीं किया गया है और न संस्कृत का अस्वाभाविक पक्षपात

ही "हम साया", "ताज्जुब", "कब्जा", "इस्तिफा", "खैर", "दुरुस्त" "ज़रा-ज़रा", आदि उर्दू के शब्द तो उनकी भाषा में एक तरफ़ मिलते हैं और दूसरी तरफ़ "ढकोसला" "अलमस्त" आदि प्रांतीय और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी किया है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि राय साहब उर्दू को आसानी से अपनाना चाहते हैं। नहीं उन्होंने तो उर्दू मुहावरों को भी हिंदी रूप देने का प्रयत्न किया है। यथा "दिल का छोटा है", के स्थान पर "हृदय से लघुता है।" इस प्रयत्न का प्रधान कारण उनकी रुचि ही है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

परिचय—आपका जन्म संवत् १८४० तथा स्वर्गवास १८६८ में हुआ। आप भाषा-शास्त्र तथा पंडित थे।

हिंदी-सेवा

आपने यद्यपि कहानियां प्रायः तीन ही लिखी हैं—किन्तु कहानी-साहित्य में इनका निजी स्थान है। आपका कहानी-संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है।

विषय

आपने प्रायः सामाजिक विषयों, समाज सुधार तथा इतिहास आदि पर लिखा है अधिक गम्भीर विषयों, जैसे साहित्यिक आलोचना एवं भाषा-विज्ञान आदि पर नहीं।

शैली

आपकी शैली स्पष्ट, सरल और व्यवहारिक है। वाक्य विन्यास सुगठित; मुहावरेदार, आकर्षक और व्यंग्यपूर्ण है। शैली में चलचलापन और रोचकता है। उर्दू शब्दों एवं पदावली तथा अंगरेजी शब्दों का व्यवहार विषय को रोचक तथा बोधगम्य करने के लिये यत्र तत्र किया गया है यद्यपि इससे कहीं कहीं क्लिष्टता आ गई है। संस्कृत भाषा की छाप इनके गंभीर लेखों में स्पष्ट है।

भाषा

आपकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित तथा साहित्यिक है।

वाक्य विन्यास का संगठन बलशाली और चमत्कारपूर्ण है। कहीं कहीं प्रान्तिकता का प्रभाव उनके क्रिया-शब्दों पर पड़ा है। इससे पंडिताऊपन झलकता है जैसे "करैंगे, रहैं, कहलावते हैं, आदि शब्दों के व्यवहारिक स्वरूपों वाक्यों के सामूहिक विन्यास तथा भाव व्यंजना के उपयोग में भी उनके संस्कृत-ज्ञान की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। विशेष कर उनके आलोचनात्मक एवं साहित्यिक और गंभीर लेखों में अन्यथा प्रायः छोटे छोटे प्रभावोत्पादक वाक्यों के प्रयोग विनोदपूर्ण एवं व्यंग से भरी-पुरी शैली औ मुहावरों की लड़ियां ऐसी गूँथ कर तथा कहीं कहीं मिश्रित भाषा का प्रयोग करके आपने अपनी शैली को अत्यन्त रोचक और मार्मिक बना दिया है विशेष कर अपने समाजिक लेखों एवं कहानियां की भाषा शैली का।

पंडित चतुरसेन शास्त्री

परिचय—आपका जन्म संवत् १६४८ में हुआ। आप दिल्ली के साहित्यिकों में अग्रगण्य हैं।

अमर अभिलाषा

ग्रंथ—अमर अभिलाषा, हृदय की प्यास, हृदय की परख (उपन्यास), अक्षत, रजकण (कहानी-संग्रह), और अन्तस्तल आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

विषय

आप एक प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कहानी लेखक हैं। आपने गद्य-काव्य भी लिखा है। कई पत्र पत्रिकाओं का संपादन भी आपने किया है।

भाषा तथा शैली

आपकी रचनाओं की भाषा में स्वाभाविकता, सरलता और चलताऊपन है, इस कारण अनेक चरित्र-चित्रण में अधिक सजीवता आ गई है। कथोपकथन सुन्दर है। रचनाओं में घटनाओं के क्रम में अस्वाभाविकता कहीं नहीं है। आपने मधुर एंव तद्भव शब्दों का प्रयोग करके नित्य प्रति की परिचित भाषा पाठकों के सामने रखी है। मुहावरों का प्रयोग इस खूबी से किया गया है कि भाषा प्रवाह युक्त शक्तिशाली और सुन्दर हो गई है। आपकी भाषा एंव शैली की सब विशेषता व्यहारिकता और अकृत्रिमता है तथा वैयक्तिता की गहरी छाप। भाव

व्यंजना में आपने पूरी सफलता प्राप्त की है और यही कारण है कि विरामादि चिन्हों की अधिकता आपकी रचना में है। विभक्तियों को भी आपने यत्र तत्र छोड दिया है जैसे मैं जो राह चलते रास्ते पड़ी (रास्ते में पड़ी) वस्तु पर मन चलाऊँ। कहीं कहीं प्रान्तिकता आपके शब्द-व्यवहार में दिखाई देती है जैसे 'भिड़-ततैया आदि।

वाक्य विन्यास संगठित है। कहीं कहीं नाटकीय कथोपकथन की भांति वाक्य-विन्यास में उलट फेर किया गया है। आप हिंदी-कहानी-लेखकों में अपना एक प्रमुख स्थान रखते हैं।

कबीरदास

परिचय—लहरतारा के तालाब में बहता हुवा एक बालक पाया गया। कहा जाता है कि विधवा ब्राह्मणी ने अपने नव-जात शिशु को समाज के डर से बहा दिया था। यही कबीर थे। नीरू और नीमा इनके माता पिता थे। इनके संस्कार भी यवनों के ही अनुसार हुए। स्वामी रामानन्द के यह शिष्य थे। अतः हम इनमें हिन्दू और इस्लाम सम्मिश्रित पाते हैं। सूफी संतों का भी सत्संग इन्होंने किया और इसी से इनके ब्रह्म में हिन्दुओं के ज्ञान-मार्ग और सूफियो के उपासना और प्रेम का मेल है। इनके काव्य में कहीं तो अव्यक्त निर्गुण ईश्वर की ओर संकेत है और कहीं सगुण ईश्वर की झलक है। अवतारों का भी यत्र तत्र वर्णन है। किंतु उनके राम दशरथ के पुत्र न होकर निराकार परब्रह्म हैं। उनका नाम चाहे राम रक्खा जाये या रहीम। पढे लिखे भी यह विशेष न थे। किंतु ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा और सत्संग इन्हें प्राप्त था। इसी से इन्हें समाज का और हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों का ज्ञान था। इन सब के विषय में आपकी कविता में संकेत है।

भाषा और छंद—खड़ी बोली, फारसी और ब्रजभाषा मिश्रित है। इनकी भाषा सधुक्कड़ी कहला सकती है। कहीं-कहीं अवधी और बिहारी का मेल है। भाषा इनकी साहित्यक भले ही न कहलाए परंतु उसमें इतनी सत्यता, सादगी और स्वाभाविकता है कि इनकी कविताओं का पाठकों पर बड़ा प्रभाव पड़ता

है अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग इन्होंने किया है। शब्द तोड़े मरोड़े गये हैं। व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ भी हैं। स्पष्टवक्ता ये बड़े जबरदस्त थे। इनकी अक्खड़ता इनकी भाषा में कहीं-कहीं मिलती है। इन्होंने साखियाँ और पद लिखे हैं। मात्राओं की कमीवेशी भी इनकी कविताओं में है।

विशेष, शैली तथा आलोचना

आपने मुक्तक-काव्य लिखा है और गीति-काव्य भी। यह मुँहफट और कड़े समालोचक थे। यदि यह हिंदुओं को फटकारते थे कि "कंठी बाँधे हरि मिले बंदा बाँधे फुंदा"। तो मुसलमानों को भी बाँग देने पर, "क्या बहरा भया खुदाय" कह कर फटकारते थे। इन्होंने धर्म के प्रत्येक अंग पर समालोचनात्मक दृष्टि डाली है। भाषा और छन्द-संबंधी दोष होते हुए भी इनके भावुक हृदय में अनुभूति और कल्पना मिश्रित है। यह एक धर्म-प्रचारक और समाज-सुधारक थे। इनका कवि इनके सुधारक के आगे समान रूप से चलता है। यह बड़े स्पष्टवादी थे। अंध-विश्वासों पर इन्होंने कड़ी बौछार की है। तीर्थाटन, मूर्त्तिपूजा आदि का इन्होंने विरोध किया है एकेश्वरवाद की झलक भी इनमें हमें मिलती है। ज्ञानियों की शुष्कता का प्रभाव इनकी भाषा पर पड़ा है। अधिकतर इनकी कविता दार्शनिक भाव से पूर्ण पद्य मात्र कहला सकती है। बड़े-बड़े शब्दों में कठिन आध्यात्मिक बातें कही गई हैं जिससे अपढ़ लोगों पर प्रभाव पड़ सकता है।

उसी परब्रह्म की जिज्ञासा रहस्यवाद को जन्म देती है। कबीर ने ईश्वर को पति रूप में देखा है। वे कहते हैं:—"कहैं कबीर हम ब्याह चले हैं पुरुष एक अविनाशी"। वियोग का

दुःख संयोग की इच्छा और प्रतीक्षा, आकुलता, व्याकुलता और ईश्वर का काल्पनिक साक्षात्कार होने पर उसकी महत्ता का आभास, प्रेम में भय, रूठना, मनाना, ढिठाई, दिल की बेचैनी, धड़कन आदि रहस्यवादियों की अभ्यंतर अवस्थाएँ हैं।

ईश्वर कहता है—"मोको कहा ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवता ना मैं मसजिद ना काबे कैलाश में"।

काल—कबीर भक्तिकाल में हुए हैं। संत कवियों में ये सर्व श्रेष्ठ हैं और हिंदी-साहित्य में इनका ऊँचा स्थान है।

सूरदास

(रचनाकाल सं० १६००-२०)

किधौं सूर को सर लग्यो,
किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो,
बेध्यो सकल शरीर॥

कबीर आदि संत-कवियों की निर्गुण बानी जनता ने सुनी तो अवश्य, परन्तु उससे वह संतुष्ट नहीं हुई। इसी प्रकार सूफी कवियों की प्रेम-गाथाओं से भी उसका मनोरंजन तो अवश्य हुआ, परन्तु उसे संतोष नहीं। इसका प्रधान कारण यह था कि वह अपने चिरपरिचित राम और कृष्ण को छोड़ कर न तो ज्ञान की बातें ही सुनना चाहती थी और न प्रेम की पीर से व्याकुल होना ही। बहुत समय तक वह अपने इन आराध्य देवों से बिछुड़ी रही; कवि-जन उसे इधर-उधर की झाँकियां दिखा कर लुभाने का प्रयत्न करते रहे। वह उनके बताए हुए पथ पर कुछ दूर चलती तो जरूर; पर जब देखती कि यह उसका पूर्व परिचित पथ नहीं है, तब "ऊँहूँ" कह करके लौट पड़ती। हाँ जब उसे कृष्ण भक्ति-शाखा के कवियों की कृतियों में अपना प्यारा कृष्ण और राम भक्ति शाखा के कवियों के ग्रन्थों में अपना प्रिय राम मिल गया तब उसे ऐसी ही प्रसन्नता हुई जैसी हमें बहुत दिन के बिछड़े प्रिय-जनों को पाकर होती है। सूर और तुलसी की प्रसिद्धि और उनके ग्रन्थों के प्रचार का यही प्रधान कारण है।

परिचय—सूरदास का रचना-काल पहले आता है। इनका जन्म सन् १४८३ के लगभग आगरा और मथुरा के बीच रुनकता नामक गाँव में हुआ था। कुछ लोग इनका जन्म स्थान दिल्ली के निकट साही ग्राम मानते हैं। इनके पिता का नाम रामदास बताया जाता है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'भक्तमाल' नामक ग्रंथों के आधार पर तो ये सारस्वत ब्राह्मण थे, पर कुछ लोग इन्हें चंद बरदाई का वंशज मानते हैं। इनके अंधे होने के विषय में भी ऐसे ही दो विरोधी मत हैं; एक दल इन्हें जन्मांध मानते हैं और दूसरे का कहना है कि इन्होंने शृंगार रस तथा रूप-रंग आदि का इतना सूक्ष्म और सुन्दर वर्णन किया है जैसा कोई जन्मांध कवि नहीं कर सकता यद्यपि, यह संभव है कि अवस्था पाकर ही ये दाँते या मिलटन जैसे विश्व-प्रसिद्ध कवियों की भाँति अंधे हो गए हों। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे और उन्हीं की आज्ञा से अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण का भजन करने के लिए पदों की रचना किया करते थे। यह भी हो सकता है कि इनके 'नेत्र-विहीन हो जाने पर चित्त की एकाग्रता के लिए अवसर मिलने के कारण उनकी कल्पना-शक्ति को भी उत्तेजना मिली" हो और गुरु ने उनकी प्रतिभा देख कर जीवन-निर्वाह के लिए उक्त साधन बता दिया हो।

ग्रंथ-परिचय

कहा जाता है सूरदास ने कृष्ण संबंधी सवा लाख पद बनाए थे जिनका संग्रह (१) सूरसागर (२) सूरसारावली (३) साहित्यलहरी नामक तीन ग्रंथों में किया गया था। परंतु अब तक जितने पद हमें मिल सके हैं उनकी संख्या छः हजार से अधिक नहीं है। यह संख्या भी बहुत बड़ी है और "उसके

रचियता को सरस्वती का वरद महाकवि सिद्ध कराने के लिए पर्याप्त है।" ऊपर के ग्रंथों में दूसरा तो प्रथम का संक्षिप्त संस्करण है जैसा नाम से स्पष्ट ही है और तीसरा उन दृष्टकूटों का संग्रह है।

"सूरसागर" कवि का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें कृष्ण की बाल-लीला, मथुरा-प्रवास, गोपी-विरह, उद्धव-गोपी-संवाद, आदि का विषद वर्णन मिलता है। इसकी रचना भागवत की कथाओं के आधार पर, उसी के क्रमानुसार की गई है और प्रत्येक स्कन्ध में प्रायः उतनी ही कथा रक्खी गई है जितनी भागवत में मिलती है। परन्तु यह भी सत्य है कि सूरसागर के सभी पद भागवत के आधार पर नहीं बने हैं। इसका प्रमाण यह है कि भागवत में तो कहीं राधा का नाम भी नहीं मिलता पर सूरसागर का अन्तिमांश राधा सम्बन्धी पदों से भरा पड़ा है।

विषय

सूर-सागर के प्रारम्भ में कृष्ण-जन्म की कथा है। गोकुल से ब्रज पहुँचकर कृष्ण बाल्यावस्था में पदार्पण करते हैं। इसके पश्चात् शैशवावस्था आती है। इन दोनों अवस्थाओं की कृष्ण लीला सूरदास ने बड़े सुन्दर और मधुर ढंग से लिखी है बालक कृष्ण माँ का दूध पीता है, रोटी के लिए हठ करता है परन्तु माता बहला-फुसला कर उसे दूध ही पिलाती है, रोटी नहीं देती बालक जब खेल अथवा सो रहा है तब उसकी भोली-भाली सुन्दर क्रीड़ाएँ अथवा मूर्ति देख कर माता अभिलाषा करती है, कब यह बड़ा होगा, कब इसके छोटे-छोटे दांत निकलेंगे, कब यह घर भर में घुटुओं चलेगा, कब देहली के बाहर जायगा। बालक कृष्ण जब खड़ा होने लगा, अपने हाथ से माखन खाने

लगा, तब माता छिप कर देखती है कि बालक अपने नन्हे नन्हे हाथों से अपने प्रतिबिंब को माखन खिला रहा है, कभी उसे देख कर नांचने लगता है। इसी प्रकार उसके हठ का भी सरल और स्वभाविक वर्णन है कुछ और बड़े होकर कृष्ण गैयां चराने जाते और सखाओं के साथ खेल में हारते और रूठते हैं, माखन चोरी करने जाते और पकड़े जाने पर अपनी सफाई देते हैं। इन सभी बातों का अत्यंत सूक्ष्म और स्वभाविक वर्णन सूर सागर के प्रारंभ में मिलता है।

अंतिमांश का प्रमुख विषय गोपी-विरह है। कृष्ण जिन गोपीकाओं के साथ शैशावस्था में खेला करते थे, जिनके साथ नाचते-गाते थे, उन्हीं को रोते-कलपते छोड़कर मथुरा जाने को विवश होते हैं। गोपिकाएँ उनके वियोग-जन्य दुख से व्यथित हो वेदना के गीत गाती हैं। कृष्ण उद्धव को उन्हें समझाने भेजते हैं, परन्तु गोपियों को उनके ज्ञानोपदेश से संतोष नहीं होता। उद्धव का पहले तो वे आदर करती हैं परन्तु बाद में कभी उनकी हँसी उड़ाती हैं, कभी नाराज होकर उनसे लौट जाने को कहती हैं। उद्धव-गोपी-संवाद "भ्रमरगीत" के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि गोपियों ने उद्धव से जितनी बातें कहीं वे भ्रमर को संबोधन करके कहीं थीं। सूरदास की यह रचना हिन्दी-साहित्य की अनूठी चीज है।

भाषा

सूरदास ने व्रज की चलती भाषा में कविता की है। यत्र-तत्र मुहावरों और कहावतों का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है। प्रौढता की दृष्टि से सूर की भाषा प्रथम साहित्यिक रचना होते हुए भी परिमार्जित और प्रांजल है। उसमें मधुरता भी प्रर्याप्त

मात्रा में है और कोमलता भी। "साहित्य-लहरी" के कूट पदों को छोड़ कर सूर की भाषा में प्रसाद गुण ही प्रायः सर्वत्र प्रधान है। एक अलोचक के शब्दों में, सूर की भाषा मानस से सरल कबीर की अहृण और दुरूह भाषा से मधुर और शीघ्र समझ में आने वाली है। उसमें भाव तुलसी के समान और माधुर्य विद्यापति के समान है।

शैली

सूरदास की समस्त रचना पदों में है। पूत भावनाओं को लेकर रचे गए ये पद गेय है। समस्त पदों के संग्रह, सूरसागर को देखकर कहना पड़ता है कि शायद ही सूरदास ने कोइ ऐसी राग-रागिनी छोड़ी हो, जिसका उदाहरण इसमें न मिल जाय। अतः हम सूरसागर को गीत-काव्य का नाम दे सकते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गीत-काव्य के सभी आवश्यक तत्वों का इसमें सुन्दर समावेश है। साधारणतः गीत-काव्य की रचना संबद्ध कथा को नहीं, उसके मनोहर और हृदय-स्पर्शी स्थलों को लेकर की जाती है। सूरसागर में भी हम देखते हैं कि कृष्ण चरित्र के अत्यन्त रमणीक प्रसंगों का ही विशेष वर्णन किया गया है। उसका प्रत्येक पद पूर्ण है, और उसमें हमें कवि की अंतरात्मा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। हृदय के स्वभाविक मनोभावों—वात्सल्य-प्रेम विरह, वेदना आदि—से ओतप्रोत प्रत्येक पद पाठक को मुग्ध कर लेता है। सूर की शैली में यह दोष बताया जाता है कि एक ही भाव अनेक पदों में आ गया है। हमारी सम्मति में, विभिन्न भावनाओं की प्रवाह-पूर्ण व्यंजना के कारण, एक ही बात की अनेक आवृत्तियाँ होने पर भी पदों में शिथिलता नहीं आने

पाई है। कह सकते हैं कि प्रत्येक लीला के छोटे-बड़े अनेक चित्र भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से खींचे गए हैं।

अपने अनेक पदों की प्रथम पंक्ति सूरदास ने बड़ी मार्मिक और भावपूर्ण रक्खी है और आगे की पंक्तियों में प्रथम पंक्ति की अनूठी उक्ति का ही उत्तरोत्तर विकास किया है। ऐसे कुछ पद बड़े सुन्दर हैं। कुछ पदों में शिथिलता भी है, पर नाममात्र को।

सूरसागर के पदों में काव्य की अन्य विशेषताओं के साथ साथ अलंकार भी स्वाभाविक और सुन्दर हैं। प्रायः रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा, अलंकारों के वर्णनों में सूर को विशेष सफलता मिली है। हाँ इनका बाहुल्य कहीं-कहीं खटकता भी है।

विशेषताएँ

सूर का काव्य उत्तम गुणों से विभूषित है। उसमें कृष्ण की बाल-लीलाओं और बाल-चापल्य को लेकर वात्सल्य का जैसा सुन्दर वर्णन किया गया है उसी प्रकार युवा कृष्ण और युवती गोपिकाओं के प्रेम को लेकर शृंगार रस का। इस सम्बन्ध में सबसे महत्व की बात यह है कि गोपियों का प्रेम अत्यन्त स्वाभाविक है और "लरिकाई को प्रेम कहो सखि कैसे छूटै" की समस्या हमारे सामने रखता है। अपने शृंगारिक प्रेम से ओत प्रोत वर्णन में वे प्रेम का कोना-कोना झाँक आए हैं; कोई वृत्ति, कोई भावना, कोई स्थिति ऐसी नहीं बची जिसका उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन न किया हो। दूसरे शब्दों में, बाल प्रकृति और विरह-सम्बन्धी जितनी भी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं और जितना ढंग से उन विविध स्थितियों और दशाओं का हिंदी-

साहित्य में वर्णन हुआ है वे किसी न किसी रूप में सूर के काव्य में अवश्य वर्तमान है। बालक कृष्ण की बाल लीलाएँ देख कर माता-पिता ही नहीं अड़ौस-पड़ौस के स्त्री-पुरुष का मुग्ध होना और फिर उसी के वियोग में माता-पिता, सखी सखा और सगे-संबंधियों के साथ साथ परिजनों और पुरजनों का दुखी होना कितना स्वाभाविक और सत्य है! कृष्ण के वियोग में गोपियों के ये कथनः—

(१) मदनगुपाल बिना या तन की सबै बात बदली।
(२) निस दिन बरसत नैन हमारे।
(३) अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।

कितने मार्मिक हैं! उनका "भ्रमर-गीत" इस प्रकार की करुण उक्तियों से भरा पड़ा है। उसके विरह-वेदना और प्रेमातिरेक-सम्बन्धी पद तो बड़ी उच्च कोटि के हैं।

सूर के विनय-सम्बन्धी पद भी बड़े सुन्दर हैं। सरलता और स्पष्टता उनके प्रधान गुण हैं। "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो" "मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै" जैसे पद भक्तों के हृदय का सर्वस्व ही हैं। सूरदास के कुछ पदों से आलोचकों की धारणा हुई कि वे निर्गुण ईश्वर के विरोधी थे। परन्तु यह कथन अशुद्ध है। निर्गुण अथवा निराकर परमात्मा पर वे अविश्वास तो नहीं करते थे, पर गान उन्होंने सगुण ही का किया है। इसके लिए हम उन्हें दोष क्यों दें? अपनी-अपनी रुचि है। साधारण जनता के लिए निर्गुण उपासना को अगम समझ कर ही उन्होंने सगुणोपासना को प्रधानता दी है। हम तो इसे ठीक ही समझते हैं।

आलोचना

सूर की कविता से साहित्यिकों को जितना आनन्द हुआ है, भक्तों को भी उतना ही सहारा मिला है। दोनों दृष्टियों से उसका आज प्रचार है और दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। परन्तु सूर-सागर के साहित्यिक गुणों के कारण हम उस पर विशेष गर्व करते हैं। हृदय की न जाने कितनी गूढ़-गम्भीर भावनाओं और वृत्तियों की उसमें व्यंजना है। सरलता, मधुरता, कोमलता और स्पष्टता उसकी प्रमुख विशेषता है और भाव, वर्णन-शैली तथा भाषा के सम्बन्ध में तो इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उनके पश्चात् के अनेक कवियों ने सूरदास का असफल अनुकरण करके ही संतोष किया है। यह हमारे लिए बड़े गर्व की बात है कि सूरदास जैसा अन्यतम कवि हिन्दी में हुआ जिसका "भ्रमर-गीत" संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य-रत्नों में गिना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास

परिस्थितिः—मुगलों का समय था, धर्म का पूर्ण ह्रास हो रहा था। बाह्याडंबर या ढोंग ही धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो रहा था। लोग अपने प्राचीन आदर्शों को भूल चुके थे। मत-मतान्तरों के झगड़े नग्न रूप से समाज की छाती पर हो रहे थे। विलास-प्रियता की मात्रा अत्याधिक बढ़ गई थी। अतः समाज की भलाई के लिए किसी ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जो नित्य प्रति के जीवन में पग-पग पर लोगों का साथ दे सके। कह सकते हैं कि इस कमी को पूरा करने के लिए ही तुलसी का अभ्युदय हुआ।

मान सरोवर और चारों धामों की भी यात्रा आपने की। साथ साथ आप अध्ययन भी करते रहे। आप गणित, ज्योतिष, दर्शन, वेदांत, काव्य, और संस्कृत आदि के ज्ञाता थे। महामारी में आपकी मृत्यु हुई। आपकी मृत्यु के विषय में यह दोहा है:—

"संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥"

आपके मित्रों में टोडरमल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नन्ददास, रहीम, सूर गंग केशव आदि से आपकी भेंट और मीरा से पत्रव्यवहार होना बताया जाता है।

मुख्य ग्रन्थ

दोहावली, कवितावली, (व्रज भाषा और छप्पय, कवित्त, सवैया छंद) गीतावली (व्रजभाषा के पदों में गेय कविता) *राम-चरित-मानस (साहित्यिक अवधी और दोहा-चौपाई, छंद)* विनय पत्रिका, (व्रज भाषा, गेय पदों में) बरवै ,रामायण (व्रज भाषा) पार्वती मंगल और जानकी मंगल (ठेठ अवधी और दोहा-चौपाई छंद)।

शैली और भाषा

तुलसी ने (१) चारणों और भाटों की कवित्त एवं छप्पय शैली (२) विद्यापति आदि के गेय पदों वाली शैली (३) निर्गुणियों की दूहा (दोहा) वाली शैली (४) प्रेम-गाथा वालों की दोहा-चौपाई वाली शैली अपनाई। तत्कालीन प्रचलित भाषायें अवधी और व्रज थीं। आपने इन दोनों को अपनाया प्रत्येक भाषा के दोनों रूपों (ठेठ और साहित्यिक) में आपने

कविता की है। गोस्वामीजी की भाषा सुबोध है और उसमें धारा प्रवाह है। कहावतों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग उनके ग्रन्थों में किया गया है। भाषा परिमार्जित है और विदेशी शब्दों को हिंदी रूप दिया गया है।

विशेष

आपने तत्कालीन विशेष परिस्थियों और सामाजिक दशा पर प्रकाश डाला है और उस समय की बुराइयों को एक सुधारक की भाँति दूर करने का सफल प्रयत्न किया है। जैसे शैव और वैष्णवों का झगड़ा तो उनके समय में एक हो रहा था और निर्गुणियों के अनेक पंथ दूसरी ओर नित्य प्रति बनते जा रहे थे। जिनके कपट और आडम्बर पूर्ण व्यवहार से जनता बहुत दुखी थी। तुलसी ने ऐसे लोगों का झगड़ा निबटाया और बात पर अड़े रहकर समाज को हानि पहुँचाने वालों को बुरी तरह फटकारा। आदर्श से गिरे हिन्दुओं का सच्चा रूप और मर्यादा पुरुषोत्तम राम का आदर्श पूर्ण जीवन हिंदू जनता के सामने रखकर उन्होंने समाज सुधार का प्रयत्न किया।

इनकी कविता में स्वाभाविकता, सरसता, सरलता और माधुर्य है। अलंकारों का संयत और उचित प्रयोग मिलता है। रूपक आपके बहुत श्रेष्ठ बन पड़े हैं। इनमें भाव विशद और कल्पना भी ऊँची है।

प्रकृति के सुन्दर चित्र भी इन्होंने खींचे हैं; किन्तु जहाँ पर प्रकृति-वर्णन के साथ वहां उपदेश की झड़ी लगा देते हैं वहां कुछ खल जाता है। हां ऐसे स्थलों का नैतिक महत्व बहुत है। उपमायें भी बहुत हुई हैं। अपने नायकों के गुण दिखाने के लिए आप कहीं कहीं उपनायकों की त्रुटियां दिखाना आरम्भ

कर देते हैं। राम के महत्व को दिखाने के लिए रावण की दुर्दशा इन्होंने की है। सुग्रीव और विभीषण के बुरे रूप को भी इन्होंने सुन्दर रूप दिया है। वैसे ही बालि आदि का रूप अधिक विकृत करके दिखाया है। किन्तु यह सब राम की अनन्य भक्ति और निजी धार्मिक सिद्धान्त को दृष्टि में रख कर किया गया है।

मलिक मोहम्मद जायसी

परिचयः—आप शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे। आप जायस के निवासी थे। संवत् १५९७ में शेरशाह के समय में आपने 'पद्मावत' की रचना की है। अमेठी में आपकी कब्र है।

ग्रंथः—अखरावट और आखिरी कलाम आपके अन्य ग्रन्थ हैं।

विशेषः—धर्म, सिद्धान्त के तत्वों तथा आध्यात्मिक विषयों पर आपने कविता की है। लोक पक्ष और आध्यात्म पक्ष दोनों ओर की गूढ़, गंभीर और सरल अभिव्यंजना और व्याख्या की गई है। परमात्मा से प्रेम की पीर सर्वत्र व्यापक है। जायसी की कविता ग्रन्थ पद्मावत फारसी मसनवी शैलीपर लिखा गया है। संस्कृत-प्रबन्ध काव्य में जो सर्गबद्ध पद्धति है वह नहीं अपनाई गई है। किन्तु वीर रस और शृंगार रस का वर्णन भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार, हुआ है। पद्मिनी में ईश्वर का रूपक माना गया है। पद्मिनी के सौंदर्य में ईश्वर के अनन्त सौंदर्य के दर्शन हमें मिलते हैं। जिस प्रकार साधक के मार्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकार बाधक होते हैं (ईश्वर की प्राप्ति के कठिन मार्ग से), उसी का आभास हमें राजा के सिंहल तक पहुँचने के पहले कष्ट-सूची में मिलता है। सूफी मत मानने वाले प्रायः सभी संत यवन थे। इनका मत हिंदू वेदान्त और इस्लाम धर्म का सम्मिश्रण है।

भाषा और छन्दः—जायसी ने दोहे-चौपाइयों में कविता लिखी है चार पदों की चौपाई को दो ही पदों की इन्होंने माना

है। इनकी भाषा ठेठ अवधी है। दोहे-चौपाइयों में कहीं-कहीं मात्राओं की कमवेशी भी है। भाषा में स्वाभाविकता, प्रवाह और मिठास है। अलंकारों का प्रयोग भी इन्होंने विषय को समझाने के लिये ही किया है, अपनी योग्यता दिखाने के लिये नहीं। इनकी कविता की विशेषता भावों की कोमलता, सरलता, ऊँची कल्पना और हृदय की सच्ची अनुभूति है। इनकी कविता रहस्यवाद के अन्तर्गत है।

नरोत्तमदास

परिचयः—ये जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। संवत् १६१२ के लगभग आप वर्तमान थे और सीतापुर में रहते थे।

"सुदामा चरित" इनका प्रसिद्ध ग्रंथ बताया जाता है। "ध्रुव-चरित्र" इनका अन्य काव्य बताया जाता है।

भाषा

इनकी ब्रज भाषा है। बैसवाड़े की भाषा का स्पष्ट प्रभाव है। कहीं कहीं शब्दों को तुक मिलाने के लिये तोड़ा-मरोड़ा भी गया है। भाषा सरल, प्रसाद, गुण पूर्ण और सरस है। उर्दू के शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा सजीव और चमत्कृत हो गई है। जैसे "कोदों सवां जुड़ना" "दधि दूध मिठौनी चाहना" "लटा लदाय दै हैं" इत्यादि।

विशेष

मनुष्य के मनोभावों का बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन उन्होंने 'सुदामा-चरित्र' में कराया है। अलंकार सीधे-सादे और स्वाभाविक हैं। कथोपकथन बहुत सुन्दर है। कृष्ण एक सच्चे मित्र के रूप में दिखाए गए हैं। कवि ने विविध छंदों, विशेषकर कवित्त, दोहों और सवैयों में यह ग्रन्थ लिखा है। इसके संबंध में इतना लिखना पर्याप्त है कि "सुदामा-चरित्र" बनाया है, मानो रस का समुद्र बहाया है।

अब्दुर्रहीम खानखाना

परिचयः—आप बैरामखां के पुत्र थे। आपका जन्म सं० १६१३ में हुआ। युवा होकर ये बादशाह के दरबार में आगए और प्रसिद्ध नवरत्नों में थे। इन्होंने हिंदी की सेवा की है। दानी ऐसे थे कि गंग को एक दफा ३६ लाख रुपये दान कर दिये थे। संवत् १६४६ में आप महामंत्री बनाये गए वृद्धावस्था में इनके भाग्य ने पलटा खाया और खुर्रम और महाबतखां के कैदी तक इन्हें रहना पड़ा। ७२ वर्ष की आयु पाकर इनकी मृत्यु हुई। ये कवियों के आश्रयदाता थे तथा साहित्य-मर्मज्ञ, प्रतिभा-शाली परोपकारी और कुशल राजनीतिज्ञ थे।

आपकी कविता का प्रचार पढ़े-लिखे विद्वानों में भी है और मूर्ख निरक्षरों में भी; शहर में भी आपका आदर करने वाले हैं और देहात में तो आपके दोहे बात-बात में लोग दृष्टांत में कहते हैं। नीति, उपदेश और भक्ति पर कही हुई आपकी उक्तियाँ बड़ी भावमय और प्रभावोत्पादक हैं। आपके भावों में तल्लीनता है और उनसे हिंदी भाषा, हिंदू देवताओं और भारतीय संस्कृति के प्रति आपका अटूट प्रेम प्रगट होता है।

विषय

आपका विषय भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, शृंगार, नीति, प्रेम, स्वभाविमान, ईश्वर प्रीति और उपदेश है। आपके दोहे सीधे हृदय पर चोट करते हैं। आपके चमत्कार-पूर्ण और मर्मस्पर्शी

दोहे बड़े चुटीले हैं। आपका बरवै छंद में "नायिका वर्णन" बड़ा सुन्दर है।

छन्दः—आपने मुक्तक काव्य लिखा है। दोहा सोरठा और बरवै के अतिरिक्त आपने, कवित्त, सवैया, पद, और संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं।

भाषा

आपके बरवै छंद ठेठ अवधी भाषा में लिखे गए हैं जो बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। दोहे आपके शुद्ध ब्रज भाषा में लिखे गए हैं। आपकी भाषा सरल, सरस, प्रवाह-पूर्ण और परिमार्जित है। भाषा के ऊपर आपका पूर्ण प्रभाव है।

साहित्यिक ज्ञान और अनुभव

आप बड़े उदार हृदय के धनी, प्रतिष्ठित, दानी, परोपकारी और दीनबन्धु थे। यदि एक ओर आपको महलों, राजनीति, युद्ध और सुवैभव आदि का पूर्ण रूप से ज्ञान था तो दूसरी ओर गरीबों के सुख-दुख का और उनके दैनिक जीवन का। आप अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत आदि भाषाओं के पंडित थे। हिंदी साहित्य, हिन्दुओं की धर्म-भावनाओं और हमारी पौराणिक कथाओं का ज्ञान भी आपको पूर्ण रूप से था। आपकी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों तक पहुँच थी और बारीक-ख्याली के लिए तो आपकी जितनी तारीफ की जाय कम है।

गौण। इनकी सहायता से भाव पक्ष के सुन्दर और सजीव चित्र खींचने में आपको सफलता मिली है।

विशेष

शब्दाडंबर तो आपमें है ही नहीं। आपकी कविता में रोचकता और चमत्कार है। अन्य पूर्ववर्ती कवियों के भावों को अपना कर भी उन्हें आपने नवीन परिधान पहनाया है। उनमें रहीमत्व की छाप लग गई है। उन्होंने भावापहरण नहीं किया है, किन्तु उनका भाव-सादृश्य सराहनीय है।

सेनापति

परिचयः—आपका जन्म संवत् १६४६ में हुआ। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा अनूपशहर के निवासी थे। आपका कवित्त रत्नाकर ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है।

विशेषः—आप भक्ति काल में हुए हैं। आपने भी रीति ग्रंथ लिखा है। प्रकृति वर्णन तथा प्रकृति निरीक्षण आपका बहुत श्रेष्ठ है। ऐसा प्रकृति का वर्णन रीति तथा भक्तिकाल के किसी कविने नहीं किया है! आपने अधिकतर कवित्त सवैये लिखे हैं। श्लेष, यमक, और अनुप्रास आपके विशेष सुन्दर हैं। आप बड़े भावुक और निपुण कवि हैं। आपकी कविता मर्मस्पर्शिनी, बोधगम्य, सरल, सरस और भक्ति से परिपूर्ण है। आपकी भाषा प्रौढ़, प्रांजल, मधुर और शुद्ध ब्रज भाषा है। भाषा पर आपका पूरा अधिकार है और वह चमत्कार-पूर्ण तथा कृत्रिमता से दूर है। अलंकारों के लाने में आप बहुत चतुर है किन्तु उसमें कहीं भी भद्दापन नहीं आ पाया है।

महाकवि केशव दास

परिचय—आप का जन्म संवत् १६१८ और मृत्यु १६७४ के लगभग हुई। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे। ओरछा के इन्द्रजीतसिंह की सभा में आपका बहुत मान था। आप रीति ग्रन्थ लिखने वालों में अग्रगण्य हैं। काव्य के सभी अंगों का सम्यक् निरूपण आपने किया है। शास्त्रीय पद्धति से साहित्य-ग्रन्थ लिखने का श्रेय आप ही को है।

ग्रन्थ—कवि-प्रिया, रसिक प्रिया, रामचन्द्रिका, विज्ञान-गीता, वीर सिंहदेव चरित्र, रतनबावनी, और जहाँगीर-जस चन्द्रिका आपके ग्रन्थ हैं जिनमें प्रथम तीन बहुत प्रसिद्ध हैं।

छंद और भाषा—ग्रन्थ ब्रज भाषा में लिखे गए हैं। जिनमें बुन्देलखण्डी-भाषा का मेल है। भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार है, अतः क्लिष्ट है। आप ही के लिए कहा गया है—जाको देन न चहैं विदाई, पूछहिं केशव की कविताई। हाँ मुहावरों और शब्दों का चमत्कार तथा अलंकारिक प्रयोग आपके काव्य में देखने योग्य है। छंद जल्दी जल्दी बदलते हैं। (राम चन्द्रिका में विशेष रूप से) किन्तु आप सर्व-व्यापिनी दृष्टि के कवि हैं। हृदय पक्ष काव्य में कम है, चमत्कार अधिक है अतः कहीं-कहीं मार्मिकता तथा सयंम दब गया है। करुणा-पूर्ण और महत्वपूर्ण स्थलों को भी कहीं कहीं उड़ा दिया गया है। अलंकारों के तो आप गुरू ही हैं। रामचन्द्रिका तो जैसे छंदों और अलंकारों के उदाहरण स्वरूप ही लिखी गई है। ज्ञान और अनुभव आपका विस्तृत था। राज दरबार की सभ्यता, नीति-नियम,

युद्ध, राजनीति कूट नीति, वैद्य और ज्योतिष आदि का ज्ञान आपका अटूट था, और इसका प्रभाव आपके काव्य पर भी पड़ा है। आकृति वर्णन भी आपका बहुत श्रेष्ठ नहीं है। पर कथोपकथन आपका श्रेष्ठ है। सहृदयता की भले ही इनमें कमी संभव है हो, किन्तु उनकी सूझ और प्रतिभा विस्तृत और गम्भीर है। शृंगार रस आपका बहुत उत्तम है। प्रताप, ऐश्वर्य, वीरता और आंतक आदि के वर्णन में आपको सफलता मिली है। संवाद आपके सुन्दर बने हैं। प्रबन्ध काव्य की रचना में आपको बहुत सफलता नहीं हुई है। अपने समय के साहित्यिक वातावरण से आचार्य केशव बहुत प्रभावित हुए हैं, इसी से इनमें कुछ कमियां रह गई हैं।

आपके विषय में कहा गया है।

"सूर सूर- तुलसी ससी, उडुगण केशव दास,
अब के कवि खद्योत सम, जँह तँह करत प्रकाश"

महाकवि रसखान

परिचयः—आप दिल्ली के एक यवन पठान सरदार थे। आप श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। आप परम कृष्ण भक्त थे। आप ही ऐसे भक्तों के लिए भारतेन्दु जी ने कहा है "इन मुसलमान हरिजननपै कोटिन हिंदू वारिये।" प्रेम-वाटिका (दोहे) और सुजान-रसखान (कवित्त सवैया) इनके दो ग्रंथ प्रकाशित हैं।

विशेषः—आपने कवित्त-सवैया तथा दोहों में कविता की है। विषय प्रेम तथा शृंगार है। शुद्ध व्रजभाषा इतनी चलती हुई, चुस्त, सरल और सरस है कि साधारण मनुष्य कवित्त सवैयों से ही रसखान कहने लगे हैं। अलंकारों, विशेष कर अनुप्रासों का सुन्दर प्रयोग और भाषा की मधुरता ने इनकी कविता को अत्यन्त सर्व-प्रिय बना दिया है यद्यपि परिमाण में इनकी कविता कम है। इनकी कविता अत्यधिक मर्मस्पर्शिनी तथा भगवत् प्रेम में डूबी हुई है।

महाकवि देव

परिचय—पंडित देवदत्तजी का जन्म संवत् १७३० में हुआ। आप इटावा के निवासी थे तथा कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। कहते हैं ७४ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ।

ग्रन्थ—आपने प्रायः ७२ ग्रन्थ लिखे हैं, ऐसा कहा जाता है जिसमें २६ ग्रन्थ उपलब्ध भी हैं। भाव विलास, अष्ट छाप, भवानी विलास, रस विलास, सुख सागर तरंग आदि ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

महाकवि बिहारीलाल

ये माथुर चौबे थे। इनका जन्म संवत् १६६० में हुआ था। इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखंड में व्यतीत हुई और युवावस्था मथुरा में। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयशाह (जयसिंह) के दरबार में राजकवि थे। छोटी रानी पर आसक्त महाराजा को महल के बाहर निकलवा लेने का सौभाग्य इन्हें ही प्राप्त हुआ। बिहारी ने केवल ७०० दोहे लिखे, और कहते हैं प्रति दोहे पर इन्हें एक अशर्फी मिली थी। इनकी "सतसई" हिंदी में बहुत प्रसिद्ध है। "गागर में सागर भरना" इन्हीं का काम है। इनके कुछ दोहों का एक-एक शब्द एक-एक विशद भाव का द्योतक है। इनकी कविता में भरती के शब्द हमें नहीं मिलते। इनका एक शब्द भी निकाल कर यदि उसके स्थान पर उसी अर्थ का दूसरा शब्द रख दिया जाय तो काव्य का सारा सौंदर्य लुप्त हो जायगा। अलंकारों की योजना सुंदरता और खूबी से की गई है, कहीं भी भद्दापन नहीं आया है। कहीं-कहीं इन्होंने नीति संबंधी सूक्तियाँ भी कही हैं। उनमें वर्णन-वैचित्र्य या शब्द वैचित्र्य की प्रधानता है। शब्द-वैचित्र्य के लिये बहुत कम दोहे लिखे गए हैं जैसे—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय॥

भाषा

इन्होंने ब्रज भाषा में कविता की है, जो चलती हुई और

स्वाभाविक है। वाक्य-रचना सुव्यवस्थित, सुचारु और सुसंगठित है। शब्द-रचना और शब्द-चयन मधुर है और भाषा पर असाधारण अधिकार है और शब्द-रूपों की निश्चित प्रणाली है। शब्द तोड़े मरोड़े अवश्य गये हैं पर कम। कुछ शब्द गढ़े हुए भी हैं। यत्र-तत्र बुंदेलखंडी, अरबी और फ़ारसी के भी शब्द मिलते हैं।

महत्त्व

इन्होंने पुराने विचारों को नवीन वस्त्रों से आच्छादित किया है। इनकी दृष्टि बड़ी पैनी रही है। इन्होंने मानव प्रकृति का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है। इन्होंने उर्दू की सी कविता की है। दूर की क़ौड़ी लाने में भी इनका सानी दूसरा नहीं है—

"इति आवत चलि जात उत, दूरि छः सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे लगी उसासन साथ॥"

प्रकृति-वर्णन संबंधी कुछ दोहे भी उन्होंने लिखे हैं। रीति-काल के सर्व श्रेष्ठ-कवियों में इनकी गिनती होती है।

महाकवि भूषण त्रिपाठी

आपका जन्म संवत् १६७० के लगभग हुआ था। आपके पिता का नाम रत्नाकरजी था। आप चार भाई थे चिन्तामणि, मतिराम, नीलकन्ठ और भूषण—जिनमें भूषण और मतिराम बहुत प्रसिद्ध हैं। एक दफे इनकी भावज ने ऐसा कटु व्यंग्य किया कि ये घर से निकल गए। घूमते हुए ये महाराज शिवजी के दरबार में पहुँचे। वहां इनका बड़ा सम्मान हुआ। कुछ समय ये छत्रसाल के यहाँ भी रहे। यहाँ भी इनका बड़ा सत्कार हुआ।

ग्रन्थ

"शिवराज-भूषण" इनका प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ है। "शिवा-बावनी, और "छत्रसाल-दशक" कुछ चुने हुए छंदों के संग्रह है।

छंद और रस

कबित्त, छप्पय, दोहा, सवैया आदि प्रसिद्ध छंदों में भूषण ने कविता की, मुख्यतः इन्होंने वीर-रस की कविता ही की है। इनकी शृंगार-रस की जो कविता मिलती है वह है तो सुन्दर किन्तु परिणाम में अपेक्षाकृत बहुत कम है।

अलंकार

इन्होंने तो 'अलंकारों' ही पर ग्रंथ लिखा है। अतः इनकी कविता अलंकारों की खान ही है।

भाषा

इनकी कविता ब्रज भाषा में है पर बीच में बुंदेलखंडी तथा खड़ी बोली के भी शब्द मिलते हैं। फारसी और अरबी के शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। इनकी भाषा में सरसता और मिठास कम है। इसका कारण यह है कि इन्होंने वीर-रस की ओजवर्धक कविता लिखी है। ऐतिहासिक घटनाओं में हमें इनकी कविता मिलती है।

आलोचना

भूषण एक राष्ट्रीय कवि हैं। किन्तु इनकी राष्ट्रीयता परिमित है। वे भारतवर्ष और भारतवासियों के कवि नहीं थे। इनका देश भारतवर्ष न होकर केवल महाराष्ट्र था और ये केवल हिंदुओं के कवि थे, हिंदुस्तानियों के नहीं। यवनों को इन्होंने इतनी खरी-खोटी सुनाई हैं जिसकी सीमा नहीं है परंतु हमारी हिंदू संस्कृति, हमारे हिंदू धर्म की रक्षा के लिए भूषण ने जो प्रयत्न किया है, वह अत्यंत सराहनीय है।

भूषण के एक हाथ में कलम रहती थी और दूसरे में तलवार। अतः स्वयं वीर होने के कारण इनकी कविता बहुत सजीव और पूर्ण है।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

परिचय--आप सहृदय, उदार, समाज सुधारक और ललित-कलाओं के प्रेमी थे। कवियों का बड़ा आदर करते थे। और उन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन देते थे। आपकी कविता में जातीयता और देश-प्रेम की भावना भरी है। देश की तत्कालीन परिस्थितियों पर भी आपने प्रकाश डाला है।

विशेष

भारतेंदुजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। काव्य, नाट्य-साहित्य इतिहास, निबंध, आलोचना सभी कुछ आपने लिखा। केवल साहित्य ही में नहीं, समाज में भी आपने अनेक संशोधन किए। कई भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण आपने सब से सार ग्रहण किया है। भारतेंदुजी ने कई सामाजिक तथा राजनैतिक नाटक आदि लिख कर साहित्य को जनता की रुचि की ओर और परिस्थिति के अनुकूल बनाने की चेष्टा की। प्रकृति वर्णन भी आपके ग्रंथों में मिलता है। किंतु इसमें अलंकारों और कल्पना की बड़ी भरमार है। जान पड़ता है, कवि की रुचि इन दृश्यों में रमी नहीं है, केवल अपनी कल्पना की उड़ान दिखाने के लिए ही इनका वर्णन उन्होंने किया है। आपने कठिन से कठिन और सरल से सरल कविता की है। कवित्त सवैये तथा अन्य प्रकार के छंदों में आपने रचना की। आपका गीत-काव्य अत्यंत ललित और सुंदर है। खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों को आपने अपनाया। आपकी ब्रजभाषा अत्यंत श्रुति-मधुर

श्रीधर पाठक

परिचयः—आपका जन्म संवत् १६१६ में आगरा में हुआ। पहले ये सरकारी नौकर थे किन्तु इस पद पर रह कर भी आप साहित्य-सेवा करते रहे। पेंशन ले लेने के पश्चात् तो प्रयाग ही में आपका निवास रहा और साहित्य में आपने बहुत समय दिया। आप हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रहे थे।

भाषा

स्वच्छ, प्रवाहयुक्त, सरस और मधुर है। आपकी ब्रजभाषा बहुत शुद्ध है। दुरूहता-रहित और संस्कृत-गर्भित भाषा आपके काव्यों की है। पहले आप ब्रजभाषा में कविता करते थे, बाद में खड़ी-बोली में करने लगे। इनके अनुवाद, स्वतंत्र रचना-से प्रतीत होते हैं। खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का जो मिश्रण आपकी कविता में हुआ है वह मधुरता लाने के लिए ही। आपकी खड़ी बोली भी माँजी हुई है और उसमें ब्रजभाषा का-सा आनंद है। नित्य के शब्दों का व्यवहार भी आपके काव्यों में किया गया है, पर व्याकरण की दृष्टि से खड़ी बोली इतनी शुद्ध नहीं है। इनकी भाषा की एक मुख्य विशेषता उसकी विशुद्धता है। अरबी, फारसी के शब्दों से अपनी भाषा को बचाने का इन्होंने सर्वत्र प्रयत्न किया है। कह सकते हैं कि इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा और संस्कृत-प्रधान खड़ी बोली है। नए-नए छंदों का आविष्कार भी आपने किया है और अनेक नए-नए छंद भी लिखे हैं।

विषय

आपका कविता-क्षेत्र रूढ़ि से जकड़ा हुआ न था। इनकी

सुंदर, और परिमार्जित है। उसमें धारा-प्रवाह है। भाव अनूठा और हृदयस्पर्शी हैं। कल्पनाएँ कोमल और मधुर हैं। भाषा सदा सुबोध, स्पष्ट, सरस और सरल है। नाटककार तो आप उच्चश्रेणी के हैं ही, कविता की दृष्टि से भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है।

विषय की दृष्टि से इन्होंने एक ओर तो पुराने भक्ति प्रेम शृंगार आदि विषय अपनाए और दूसरी ओर जातीयता, भारतीयता आदि। इस प्रकार प्राचीन और नवीन दोनों का मेल हमें इनकी कविता में मिलता है। आधुनिक देश-प्रेम की कविता का आरंभ तो वास्तव में इन्हीं से होता है। छंद भी इन्होंने पुराने और नए दोनों ही प्रकार के अपनाए। संक्षेप में, विषय, भाषा, शैली सभी में इन्होंने कुछ नवीनता का समावेश किया और इसी कारण आपका हिंदी-कवियों में उच्च स्थान है।

श्रीधर पाठक

परिचयः—आपका जन्म संवत् १६१६ में आगरा में हुआ। पहले ये सरकारी नौकर थे किन्तु इस पद पर रह कर भी आप साहित्य-सेवा करते रहे। पेंशन ले लेने के पश्चात् तो प्रयाग ही में आपका निवास रहा और साहित्य में आपने बहुत समय दिया। आप हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रहे थे।

भाषा

स्वच्छ, प्रवाहयुक्त, सरस और मधुर है। आपकी ब्रजभाषा बहुत शुद्ध है। दुरूहता-रहित और संस्कृत-गर्भित भाषा आपके काव्यों की है। पहले आप ब्रजभाषा में कविता करते थे, बाद में खड़ी-बोली में करने लगे। इनके अनुवाद, स्वतंत्र रचना-सी प्रतीत होते हैं। खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का जो मिश्रण आपकी कविता में हुआ है वह मधुरता लाने के लिए ही। आपकी खड़ी बोली भी माँजी हुई है और उसमें ब्रजभाषा का-सा आनंद है। नित्य के शब्दों का व्यवहार भी आपके काव्यों में किया गया है, पर व्याकरण की दृष्टि से खड़ी बोली इतनी शुद्ध नहीं है। इनकी भाषा की एक मुख्य विशेषता उसकी विशुद्धता है। अरबी, फारसी के शब्दों से अपनी भाषा को बचाने का इन्होंने सर्वत्र प्रयत्न किया है। कह सकते हैं कि इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा और संस्कृत-प्रधान खड़ी बोली है। नए-नए छंदों का आविष्कार भी आपने किया है और अनेक नए-नए छंद भी लिखे हैं।

विषय

आपका कविता-क्षेत्र रूढ़ि से जकड़ा हुआ न था। इनकी

दृष्टि मनुष्यों ही के कार्य-कलाप तक सीमित नहीं थी। प्रकृति के विभिन्न रहस्यों का भी ज्ञान था। पशु-पक्षी तक इनकी काव्य-सीमा से बाहर नहीं। इनकी देश-भक्ति में राज-भक्ति का सम्मिश्रण है। अलंकारों में अनुप्रास और उत्प्रेक्षा का प्रयोग आपने बहुत सुंदर किया है। इनकी रचनाओं में मिठास एक प्रधान गुण है और उसमें योग्यता तथा पांडित्य के दर्शन भी होते हैं। इनकी कल्पना की उड़ान ऊँची है। किंतु आपकी कल्पना इसी संसार की है। देश-प्रेम-संबंधी आपकी कविता बहुत प्रसिद्ध है। उस पर राष्ट्रीयता की छाप भी है।

आपके लिखित ग्रंथ ये हैं:—श्रांत-पथिक, ऊजड़-गाँव, एकांतवासी योगी, (अनुवाद) काशमीर-सुषमा देहरादून, भारत-गीत आदि। आपने १५ के लगभग ग्रंथ लिखे हैं।

विदेशी भाषा की प्रत्यक्ष छाप इन पर नहीं पड़ी है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से इनकी भाषा में शक्ति आगई है और उसका सौंदर्य बढ़ गया है। सवैया, घनाक्षरी, रोला आदि छंदों में ही आपने कविता की है। वर्णन-शैली, चित्रमयी; सजीव और सांगोपांग है। इनकी सूझ और उक्तियाँ अनूठी है। पुराने ढंग की कविता होते हुए भी नए-नए और अनोखे भाव उसमें आए हैं। इनकी कविता पुराने कवियों की कविता से टक्कर लेती है। सूक्ष्म निरीक्षण और सहृदयता के कारण आपकी कविता बड़ी प्रभावोत्पादक हो गई है। पुराने भावों को ये नवीन परिधान पहिनाने वाले हैं; उन्हें मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया है। मनुष्य की प्रकृति का विस्तृत अनुभव इन्हें था। प्रकृति का निरीक्षण भी इन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से किया था। "गंगावतरण" में प्रकृति-वर्णन इतना सुन्दर हुआ है कि पढ़कर वर्णित दृश्य ही हमारे सामने आ जाते हैं। भारतभूमि के साथ-साथ आपने ब्रज प्रदेश का वर्णन बड़ी लग्न से किया है।

विशेष

अलंकारों का संयत एवं कलापूर्ण प्रदर्शन इनकी कविता में हुआ है। उसमें चित्रकाव्य के दर्शन होते हैं। आपकी कविता ध्वन्यात्मक होती है। आपकी उपमाएं बासी नहीं है। अलंकारों के प्रयोग में आपने जो मौलिकता दिखाई है वह सराहनीय है। उत्प्रेक्षालङ्कार आपको विशेष प्रिय था। उर्दू के ढंग की अतिशयोक्तिपूर्ण कविता भी कहीं-कहीं आपने की है। ब्रजभाषा के वर्तमान युग के आप सर्वश्रेष्ठ कवि थे। आपकी कविता पद्माकर और बिहारी तक पहुँचती है। रसों का वर्णन

उसमें बहुत श्रेष्ठ हुआ है व्यंग्य तथा वक्रतापूर्ण कविता आपकी विशेष प्रसिद्ध है।

आपके मुख्य ग्रंथ—उद्धव-शतक, गंगावतरण, हरिश्चंद्र काव्य हैं। ये व्रजभाषा में लिखे गये हैं। बिहारी-सतसई की टीका भी आपने की है। इस युग के आप सबसे बड़े व्रजभाषा के कवि और मर्मज्ञ थे।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

परिचयः—आपका जन्म संवत् १६२२ में हुआ था। आप पहले अध्यापक रहे, फिर कानूनगो। वहाँ से पेंशन लेने के पश्चात् आप काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर हो गए। इस समय आप वहीं रह कर साहित्यिक सेवा कर रहे हैं। "प्रिय-प्रवास" आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है। इधर आपने "बोल-चाल" "चोखे चौपदे" "वैदेही बनवास" और "पारिजात" आदि कई सुन्दर ग्रंथ लिखे हैं। "ठेठ हिन्दी का ठाठ" "अधखिला फूल" आदि आपके गद्य ग्रंथ भी प्रसिद्ध हैं।

भाषा

इनकी खड़ी बोली शुद्ध और मुहावरेदार होती है। संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप में प्रयोग किया है। हास्य और व्यंग्य के पुट नहीं हैं, तो भी भाषा में शिथिलता नहीं है। इन्होंने काव्य के नियमों का पूर्ण निर्वाह किया है। जो ग्रंथ इन्होंने नित्य प्रति की भाषा में लिखे हैं उनमें मुहावरों की भरमार है। इन्होंने काव्य-क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित किया है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों भाषाओं पर इनका अधिकार है। इनकी ब्रजभाषा रत्नाकरजी की भाँति प्रौढ़ तो नहीं होती किंतु भाषा की शुद्धता उसका एक विशेष गुण है।

शैली

इनकी शैली सरल और क्लिष्ट दोनों ही ढंग की है। वाक्यविन्यास सुव्यवस्थित, सुसंगठित, भावपूर्ण और सुंदर

होता है। कला-पक्ष और भाव पक्ष का सुंदर सम्मिश्रण हमें इनमें मिलता है, अलंकारों आदि की उपासना करते हुए भी यह भावों पर दृष्टि रखते हैं। देश, समाज, ब्राह्मण जाति और संगठन आदि के वह अनुरागी और अनुयायी हैं। प्राचीन संस्कृति के अनन्य उपासक होते हुए भी समाज की नई सुधार-संबंधी योजनाओं के ये समर्थक रहे हैं। आपके ऋतु-वर्णन, रस आदि भी श्रेष्ठ हुए हैं। पुरानी परिपाटी का पालन न करके इन्होंने स्वतंत्र निरीक्षण किया है। आपका प्रकृति-वर्णन बहुत सुंदर है।

विशेषताएँ

इनमें मौलिकता, प्रतिभा और अनोखी सूझ है। साहित्य की प्रगति का आपने साथ देने का प्रयत्न किया है। कुछ छाया-वादी कविता लिखने का भी प्रयास आपने किया है। आपका "प्रिय-प्रवास" महाकाव्य अतुकांत छन्दों में लिखा गया है। उसके द्वारा लोकसेवा का आदर्श आपने उपस्थित किया है। आपके कृष्ण और राधा, त्याग, सेवा, प्रेम और सहानुभूति के आदर्श हैं। मार्मिक स्थलों को पहचानने की आप में अद्भुत क्षमता है। इसीसे वियोग शृंगार (यशोदा-विलाप, राधिका-वियोग-दुःख, गोप-गोपिकाओं का कष्ट आदि) और संयोग शृंगार (गोप-गोपिकाओं का कृष्ण के प्रति प्रेम-वर्णन) दोनों ही आपके सुन्दर बन पड़े हैं। आपके कृष्ण, प्राचीन कवियों के कृष्ण से भिन्न हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

परिचयः—आपका जन्म संवत १९४३ में चिरगाँव, में हुआ था। आप पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के प्रिय शिष्य हैं। आपके पिताजी स्वयं एक बड़े कवि थे। अतः आपके बाल-हृदय में कविता के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक था। आपने घर पर ही बँगला, हिंदी, उर्दू अँगरेजी आदि की शिक्षा पाई। सादगी से रहना और ऊँचे विचार रखना ही आपके जीवन का सिद्धांत रहा है।

मुख्य ग्रंथ

(१) मौलिक—भारत-भारती, जयद्रथ-वध, पंचवटी, हिंदू, साकेत, यशोधरा।

(२) अनुवादित—मेघनाथ-वध, पलासी का युद्ध, विरहिणी व्रजांगना, रुबाइयात उमर खैयाम।

शैली

गुप्तजी की शैली चार भागों में विभक्त की जा सकती है। (१) उपदेशात्मक (२) गीत-काव्यात्मक (३) नाट्यात्मक (४) प्रबंधात्मक शैली। आपको सबसे अधिक सफलता चौथी शैली में हुई है और सबसे कम तीसरी में। आपने वर्णिक और मात्रिक दोनों ही छंद लिखे हैं। गुप्तजी का छंद निर्वाचन बहुत सुंदर है। सब प्रकार के प्रचलित छंदों में (और अतुकांत भी) इन्होंने कविता की है।

भाषा

खड़ी बोली के आप प्रथम खेवे के लेखकों में हैं। भाषा सुथरी हुई और परिष्कृत रूप में है। वह परमार्जित और चलती हुई है। अधिकतर शब्द इन्होंने तत्सम रूप में प्रयोग किए हैं। व्यवहार की भाषा को इन्होंने अपनाया है। आपने यह सिद्ध कर दिया है कि खड़ी बोली में भी श्रेष्ठ कविता हो सकती है।

विशेष

आपने समय की प्रगति का साथ देने का सदा प्रयत्न किया है। आपने वर्तमान समय के छायावादियों की भाँति भी कविता की है; किंतु कहना अनुचित न होगा की आपका मन वैसी कविताओं में रमता नहीं दिखाई देता और छायावादी कविताओं में आपको विशेष सफलता भी नहीं मिली है। आप भावना-प्रधान कवि हैं। आपमें अनुभूति अधिक है, कल्पना उतनी नहीं है। मानुषी प्रकृति का अनुभव और ज्ञान आपको बहुत है और अंतस्तल तक पहुँचने को आप क्षमता रखते हैं।

आपके काव्य में ओज और प्रसाद गुण अधिक है। 'जयद्रथ-वध' करुण रस और वीर रस का अच्छा भंडार है। इनके साकेत, यशोधरा आदि ग्रंथ बहुत भावमय हैं। भारत-भारती नामक इनके ग्रंथ का बड़ा प्रचार हुआ है। उसकी कविता वर्णनात्मक है। पुराने इतिहास के वीर और नायकों को लेकर इन्होंने कविता की है। इनका विचार है कि यदि देश का उद्धार किसी प्रकार संभव है तो अपने प्राचीन इतिहास, संस्कृति और महापुरुषों पर गर्व करके ही। यह राष्ट्रीय कवि हैं। आकाश पर उड़ते हुए भी यह पृथ्वी को नहीं भूले हैं। इनके भाव और विषय अन्योन्याश्रित रूप में रहते हैं।

आध्यात्मिक पक्ष का चित्र ये भाव-जगत में सफलता पूर्वक खींच सके हैं। वेदांत को काव्य रूप में पाठकों के सामने लाना इन्हीं का काम है। किंतु एक-क्षण के लिये भी यह देश, जाति और समाज को नहीं भूले हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

परिचय—आपका जन्म संवत् १९४५ में हुआ। आप कुशल पत्रकार, ओजस्वी वक्ता तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं। आपने यों तो कहानियां तथा गद्य काव्य आदि भी लिखे हैं। किन्तु आप कवि के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। एक भारतीय आत्मा के नाम से आप कवितायें लिखते हैं। आप मध्य प्रान्त के निवासी हैं। कर्मवीर के आप सम्पादक हैं।

ग्रन्थ

'कृष्णार्जुन' युद्ध नामक नाटक आपका प्रसिद्ध रंग-मंच के उपयुक्त नाटक है। साहित्य-देवता (गद्य-काव्य); वनवासी (कहानी-संग्रह) आदि अन्य पुस्तकें हैं।

विशेष

आप केवल राष्ट्रीय कवि ही नहीं प्रेममय जीवन के भी कवि हैं। आपकी कवितायें तीन श्रेणी में बांटी जा सकती हैं। (१) राष्ट्रीय (२) प्रेमानुभूति (३) रहस्यवाद सम्बन्धी। ओज, प्रसाद, और माधुर्य का सुन्दर सम्मिश्रण इन कविताओं की विशेषता है।

भाषा और छंद

आपकी कविता में मधुरता, सरसता सहृदयता के दर्शन पग-पग पर होते हैं। आध्यात्मवाद तथा रहस्यवाद की ओर संकेत करती हुई आपकी कविता प्रायः साधारण पाठकों के लिए

जटिल और कहीं कहीं क्लिष्ट हो जाती है। किन्तु कवि की भावुकता और उसके व्यक्तित्व की छाप उसकी कविताओं में स्पष्ट रूप से अंकित है। उनकी कविताएँ एक पीड़ा एक कसक, एक हूक, एक कराह से ओत-प्रोत हैं। वह भाव प्रधान कवि हैं। उनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है पर कभी कभी उर्दू के शब्द आजाते हैं। उनकी पद पदियाँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। उनकी कविताएँ सामयिक घटनाओं की ही प्रतीक नहीं, उनमें एक चिरकालीन व्यापकता है।

श्री ठाकुर गोपालशरणसिंह

परिचयः—आपका जन्म संवत् १९४८ में हुआ। आपने पहले संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की फिर सन् १९१० में आपने मैट्रीक्युलेशन परीक्षा पास की। रीवाँ राज्य के अंतर्गत 'नई गढ़ी' ग्राम के आप सुप्रतिष्ठित इलाकेदार हैं। आप बड़े सहृदय और दयालु हैं। कविता के आप बचपनसे प्रेमी हैं। सन १९१२ से आप खड़ी बोली में कविता कर रहे हैं।

आपके मुख्य ग्रंथ ये हैं:—माधवी, कादंबिनी और मानवी।

विशेष

आपकी खड़ी बोली की कविताएँ बड़ी मधुर होती हैं। आप प्रचलित पदावली का प्रयोग करते हैं जिसमें उर्दू के शब्द भी आते रहते हैं। मुहावरों का आप सुंदर प्रयोग करते हैं। आपकी भाषा प्रसाद गुण-पूर्ण, सरल, सरस, व्यवस्थित और प्रवाह-पूर्ण होती है। अलंकारों का भी सुन्दर और कलापूर्ण प्रयोग इनकी कविता में हुआ है। अलंकार स्वतः आपकी कविता में आए हैं। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आपके प्रिय अलंकार हैं। कृष्ण और ब्रजभूमि तथा अन्य सामयिक विषयों पर लिखी शृंगार रस की कविताएँ भावपूर्ण, विशद और कोमल हैं। आपकी कल्पना की उड़ान ऊँची और अनुभूति हृदयग्राही है। प्रेम पर आपकी उक्तियां बड़ी चुटीली और हृदयस्पर्शी हैं।

स्वर्गीय बाबू जयशंकर "प्रसाद"

परिचयः—छायावाद के आप प्रथम कवि हैं। 'इंदु' नामक काशी की पत्रिका में पहले आपकी रचनायें छपती थीं। भिन्न तुकांत कविताएँ भी आप उसी समय से लिखते थे। आपकी काव्य प्रतिभा का क्रमशः विकास होता रहा और आज वर्तमान युग के वे सर्वश्रेष्ठ कवि समझे जाते हैं।

प्रसादजी का जन्म संवत् १९४६ में हुआ था। आपके पिता काशी के प्रसिद्ध 'श्री देवीप्रसादजी' सुँघनी साहु थे। केवल मिडिल तक इन्होंने शिक्षा पाई। घर पर ही संस्कृत, फारसी, उर्दू अँग्रेजी तथा बंगला की आपने शिक्षा प्राप्त की। बाल्यकाल से ही इन्हें साहित्य की ओर रुचि थी और लाख मुसीबतें पड़ने पर भी आप साहित्य सेवी रहे। आपने बौद्ध साहित्य, भारतीय प्राचीन तथा पौराणिक साहित्य, दर्शन, वेदांत और इतिहास का बहुत अध्ययन किया था। आप ऊँची श्रेणी के कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार और नाटककार थे। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।

शैली और आलोचना

प्रसादजी के प्रमुख ग्रन्थों के नाम पीछे दिए जा चुके हैं। उन पर यहां हमें विचार करना है। आपकी कविताएँ साधारणतः चार भागों में विभाजित हो सकती हैं:—

(१) अनुभूति तथा कल्पना-प्रधान।

(२) मानव-प्रकृति और साधारण-प्रकृति से संबंध रखने वाली।

(३) प्राचीनता तथा संस्कृति से पूर्ण कविता तथा राष्ट्रीयता से पूर्ण कविताएँ।

(४) गीत काव्य।

कवि की प्रेम-विषयक कविताओं में आध्यात्मिक और सांसारिकता का बहुत सुन्दर मिश्रण है; उसमें अश्लीलता का नाम भी नहीं है। आपकी विशेषता यही है कि आपने खड़ी बोली में भावपूर्ण कविता करने का प्रथम सफल प्रयोग किया था आपने तुकांत और अतुकांत दोनों प्रकार की कविताएँ की हैं। संगीत की परिपूर्णता, छन्दों की विभिन्नता, हृदय के स्वतंत्र उद्‌गारों की प्रचुरता का मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना तथा स्थान स्थान पर एक नैसर्गिक सत्ता की ओर आपका भावपूर्ण संकेत आदि आपके काव्य की विशेषताएँ हैं।

आपकी कविता में आपके व्यक्तित्व की छाप है। आपकी उक्तियां तथा सूक्तियां भी हृदय के तार झनझना देने की सामर्थ्य रखती हैं। आपकी कविता का जन्म वेदना से हुआ है। आपकी कल्पना की उड़ान बहुत ऊँची है। आप अतृप्त यौवन मस्ती तथा असफल प्रेम के कवि हैं।

भाषा

आपकी भाषा विशुद्ध उर्दू आदि विदेशी शब्दों से रहित भावों के अनुकूल, संस्कृत-प्रभावित खड़ी बोली है। संस्कृत की कहीं-कहीं दुरुह समासांत पदावली का उपयोग भी किया गया है। मुहावरों और कहावतों की कमी आपकी भाषा में है और यह बात सभी रहस्यवादी और छायावादी कवियों में पाई जाती है। इसका कारण है उनकी कल्पना और अनुभूति की प्रचुरता जिसके कारण उन्हें इनकी आवश्यकता हो

नहीं पड़ती। चमत्कार-प्रियता आपकी विशेषता है। शब्द-चयन सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और उत्तम है। भाषा आपकी मधुर और साहित्यिक है। काल्पनिक जगत में विचरण करते हुए भी आप वास्तविकता से दूर नहीं गए हैं। इतिवृत्तात्मक कहीं भी आपकी कविता में नहीं हैं। आपकी कविता में शांति और हृदय को शीतलता देने की क्षमता है।

वर्तमान युग के इने गिने उच्च कोटि के रहस्यवादी कवियों में आपका सर्वोच्च स्थान है। कोई भी साहित्य आप ऐसे महारथी को पाकर गर्व कर सकता है।

कविवर सुमित्रानंदन पंत

परिचयः—आपका जन्म संवत् १९५८ में अलमोड़ा में हुआ कौसानी के रमणीय प्राकृतिक सौंदर्य की खान पार्वतीय प्रदेश में कवि का बाल्यकाल बीता। इनके सुकुमार हृदय पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। सन् १९१९ से, जब आप इंटरमीडियेट में थे, अपना विद्यार्थी जीवन समाप्त करके काव्य-रचना करना प्रारंभ किया। साहित्य और काव्य की ओर आपकी रुचि बचपन ही से है। आप में भावुकता है, कोमलता है और है प्रकृति के प्रति प्रेम। आपका अध्ययन भी विस्तृत है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ

पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुंजन, ज्योत्स्ना, युगांत, ग्राम्या आदि काव्य और "पाँच कहानियाँ", संग्रह है। उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद भी आपने किया है।

आप कल्पना-प्रधान कवि हैं। सौंदर्य-प्रेमी तथा प्रकृति-प्रेमी होने के कारण आपकी कविता में कोमलता और रमणीयता है। दार्शनिकता आपकी कविताओं की विशेषता है। अलंकारों का भी सुंदर और सुचारु प्रयोग उसमें हुआ है। रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार आपको प्रिय हैं। आपने गीति काव्य (Lyric) लिखा है। आपके मुक्तक गीत वर्तमान काव्य भंडार की स्थायी संपत्ति हैं।

भाषा

आपने खड़ी बोली को अपनाया है। आपकी भाषा अत्यंत

मधुर है। शब्दों को कोमल बनाने के लिये आपने आवश्यकता अनुसार शब्दों में परिवर्तन किए हैं जैसे प्रिय का प्रि'। कोमलता और मधुरता लाने के लिये कहीं-कहीं प्रांतीय शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। आपका शब्द-चयन श्रेष्ठ और भावों के अनुसार है आपने स्त्रीलिंग-पुल्लिंग का प्रयोग व्याकरण के प्रचलित और अनुमोदित नियमों के अनुसार न करके शब्दों की कोमलता और कठोरता के लिये किया है। जैसे यदि बूँदें छोटी हैं तो स्त्रीलिंग और यदि बड़ी, पुल्लिंग। अन्त्यानुप्रास मिलाने और कोमलता लाने को "ण" का 'न" भी आपने किया है।

छन्द

छन्दों के चुनने में भी उपयोगिता का ध्यान रख कर स्वतंत्रता पूर्वक काम किया गया है। कौन छन्द किस विषय पर उत्तम होगा, इस पर ध्यान रक्खा गया है। स्वतन्त्रता-पूर्वक पंक्तियाँ छोटी बड़ी भी की गई हैं। आपने तुकांत और अतुकांत, दोनों प्रकार की कविताएँ की हैं। आपके छंद अधिकतर नवीन प्रकार के हैं। संक्षेप में, कवि ने अपनी स्वातन्त्र-प्रियता का आभास अपनी कविता में भी दिया है।

शैली

आपकी शैली चमत्कार-पूर्ण है। आपने ध्वन्यात्मक कविता लिखी है जो 'चित्र-काव्य के अंतर्गत' है। भावों विचारों और कल्पनाओं में गूढ़ता, नवीनता, तल्लीनता और वैज्ञानिकता पूर्ण रूप से है। आप प्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। संगीत भी आपकी कविताओं की एक विशेषता है। कवि में मनुष्यों के

अंतस्तल तक पहुँच जाने की शक्ति है और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी कविताएँ अंतस्तल पर प्रभाव डालने वाली हैं। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण पंतजी वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

परिचय—आपका जन्म संवत् १९५३ में महिपादल—राज्य मेदनीपुर (बंगाल) में हुआ। वहीं आपने बंगला, संस्कृत तथा अङ्गरेजी का अध्ययन किया। दर्शन तथा वेदान्त का भी अध्ययन किया तथा संगीत की शिक्षा भी वहीं पाई। आप उन्नाव जिले के निवासी हैं।

ग्रन्थ

अनामिका, परिमल, तुलसीदास, गीतिका, (कविता), अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती (उपन्यास) ऊषा (नाटक) रवीन्द्र कविता कानन, हिंदी-बँगला-शिक्षक, ध्रुव, प्रह्लाद, राणा प्रताप, भीष्म, शकुन्तला आदि पुस्तकों के आप प्रणेता हैं।

भाषा तथा छन्द

आपने मुक्तक छन्दों तथा अतुकान्त छन्दों में भी कविता की है। उनकी कविताओं में संगीत, ताल और लय का सुन्दर सम्मिश्रण है। कल्पना की संयत ऊँची उड़ानें तथा सुन्दर अनुभूति इनकी कविताओं की विशेषता है। कविताएँ आपकी छायावाद तथा रहस्यवाद के अन्तर्गत हैं। आप वर्तमान कवियों में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आप युग प्रवर्तक तथा हिंदी साहित्य में क्रान्ति उत्पन्न करने वाले कवि हैं। आप पठन-कला (Art of Reading) के विशेष 'कायल' हैं और वास्तव में जब आप पढ़ते हैं तो आपकी नस नस फड़कने लगती है और हृदय-गत-भाव आपके मुख

पर दृष्टिगोचर होते हैं। आपके विचारों में प्रौढ़ता और गंभीरता है। इसलिए कहीं कहीं आपकी कविताएँ दुःसह और कठिन हो गई हैं। भाषा प्रौढ़ और प्रांजल साहित्यिक खड़ी बोली है। भाषा में प्रवाह है किन्तु उसमें पंतजी का सा माधुर्य नहीं है।

आप वर्तमान समय के अपने ढँग के निराले तथा अद्वितीय कवि हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा

परिचय—आपका जन्म संवत १९६४ में फर्रुखाबाद में हुआ। आपका विवाह डाक्टर स्वरूप नारायण वर्मा के साथ हुआ। आपने संस्कृत में एम० ए० पास किया। आपने पेंटिंग संगीत आदि की भी शिक्षा प्राप्त की है। इस समय आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रिंसिपल हैं और 'चाँद' का संपादन भी कर रही हैं।

ग्रन्थ

नीहार, रश्मि, सांध्य-गीत। नीरजा पर आप सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त कर चुकी हैं। इस वर्ष आपको मंगला प्रसाद पुरस्कार भी मिला है।

विशेष

वर्तमान समय की आप सर्वश्रेष्ठ छायावादी कवयित्री हैं। आपकी कविताओं में एक मूक वेदना, एक कसक है। उसकी भावुकता, अनुभूति और हृदय-स्पर्शिता सराहनीय है। जो दर्द और वेदना आपकी कविताओं में है वह हिंदी के किसी कवि में नहीं है। स्त्रियों में कोमलता मधुरता और पीड़ा अधिक होती है और वही आपकी कविता में भी है। आप वर्तमान समय की 'मीराबाई' हैं। आपकी कविताएँ रहस्यवाद और छायावाद के अन्तर्गत हैं और अपना एक विशेष महत्व रखती हैं। निराशा और वियोग आपकी कविता के एक एक शब्द से टपकता है। आपने खड़ी बोली में कविता की है। आपकी कविताओं में कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ साथ स्वाभाविकता है।

रहस्योन्मुखी भावनाएँ देवीजी की निराकार उपासना की द्योतक हैं। आपकी कविताएँ करुणा-रस प्रधान हैं। आपने अपने हृदय को चीर कर कागज़ पर रख दिया है। आपने शृङ्गारिक कविताएँ ही अधिक लिखी हैं। आपकी कविताओं की दार्शनिकता शुष्क न होकर सरस और भावमय है। आपकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित शुद्ध और व्याकरण संयत है। उसमें धारा-प्रवाह है। अलंकारों का भी संयत प्रयोग हुआ है। आपने नवीन प्रकार के छंदों में भी कविता की है।

आपकी कविताओं ने हिंदी-साहित्य में एक क्रांति उत्पन्न कर दी है।

डा० राम कुमार वर्मा

परिचयः—आपका जन्म संवत् १९६२ में मध्य प्रांत के सागर-जिले में हुआ। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया और वहीं हिन्दी के लेक्चरार हो गये। नागपुर से आपने पी० एच-डी० की डिग्री पास की।

ग्रन्थः—चित्तौर की चिता, अभिशाप, अञ्जलि, रूप-राशि, निशीथ, चित्र-रेखा, चन्द्रकिरण (काव्य ग्रन्थ), कबीर का रहस्यवाद, साहित्य-समालोचना (आलोचना-ग्रन्थ), पृथ्वी राज की आखें, रेशमी टाई, एकांकी (नाटक संग्रह) तथा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास आदि ग्रन्थों के आप प्रणेता हैं।

विशेषः—आप कल्पना-प्रधान छायावादी कवि हैं। प्रकृति सौंदर्य की सुन्दरता झाँकी में कवि को प्रेम का रूप दिखाई देता है किन्तु उस प्रेम में निराशा और वियोग का अंश अधिक है। उन्होंने सुन्दर मुक्तक तथा गीति काव्य की रचना की है—यद्यपि प्रारम्भ में उन्होंने वर्णनात्मक काव्य लिखे हैं। कवि की कल्पना उच्च और मार्मिक है। कवि की सच्ची आत्मा उसकी रहस्यवादी कविताओं में मिलती है। उसके रहस्यवाद की व्याख्या उसी के शब्दों में यह है—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रकृति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोडना चाहती है, और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ

भी अन्तर नहीं रह जाता।" भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और शुद्ध खड़ी बोली है। भाषा में प्रवाह है। अलंकारों का यत्र तत्र सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है।



पं० रामनरेश त्रिपाठी

परिचयः—आपका जन्म संवत् १९४६ में हुआ था। आप भारतवर्ष के कोने-कोने में घूम चुके हैं। आप, बड़े सौम्य, मिलनसार, अध्यवसायी और उदार हृदय के पुरुष हैं। आप काँग्रेस के भक्त हैं। आप कहानी लेखक, कवि, नाटककार तथा समालोचक हैं। आपने दर्जनों ग्रन्थ लिख कर नाम और धन कमाया है। आप बड़े प्रकृति-प्रेमी हैं।

ग्रन्थ

कविता-कौमुदी-ग्रन्थमाला, पथिक, मिलन, स्वप्न, मानसी तथा अनेक बालोपयोगी पुस्तकें। अनेक ग्राम-गीतों का जो संग्रह किया है वह विशेष प्रशंसनीय है। तुलसीदास पर लिखा हुआ आपका ग्रन्थ भी सुन्दर है।

विशेष

आपकी कुछ कविताएँ देश-भक्त से ओत-प्रोत हैं। आपने सीधा-साधा उपदेश नहीं दिया है वरन् आपने पात्रों द्वारा सुरुचिपूर्ण और सुन्दर ढंग से दिखवाया है। आपकी प्राकृतिक सौंदर्य और दृश्यों पर लिखी हुई कविताएँ भी सुन्दर हैं। मनुष्य की मानसिक अवस्था का पता लगाने में और मानव-भावनाओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में आप विशेष पटु हैं। आपके कहने का ढंग मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं।

अलंकारों का भी सुन्दर और संयत प्रयोग आपकी कविताओं में हुआ है। आपकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल, सरस, सुबोध

और सुव्यवस्थित है। आपकी रचनाओं में विचार उन्नत हैं। भाषा के ऊपर आपका अधिकार है। प्रत्यक्षवाद और आदर्शवाद का सम्मिश्रण और रहस्यवाद का पुट भी इनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं।

बाबू सियारामशरण गुप्त

परिचयः—आपका जन्म संवत् १६५१ में हुआ था। आप बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त के अनुज हैं। आपके पिता का नाम सेठ रामचरणजी गुप्त था। आपने घर ही से शिक्षा प्राप्त की। आपकी पहली कविता सन् १६१० में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी।

प्रसिद्ध ग्रन्थ

मौर्य-विजय, आर्द्रा, दूर्वादल, आत्मोत्सर्ग, पाथेय (काव्य), मानुषी (कहानी-संग्रह) झूँठ-सच (निबन्धों का नया संकलन), गोद और अंतिम आकांक्षा (उपन्यास) पुण्य-पर्व (नाटक), बापू (काव्य), कृष्णाकुमारी (अतुकांत गीति-नाट्य) आदि।

विशेष

आप खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने नए ढंग के छन्दों में कविता की है। आपकी कविताओं में राष्ट्रीयता का पुट है। आपकी भावात्मक कविताएँ कुछ रहस्यवाद और छाया-वाद का भी पुट लिए हैं। आप अनुभूति-प्रधान कवि हैं। आप का चयन श्रेष्ठ और सुरुचिपूर्ण है। आपकी कविताएँ सरल, सरस, भावपूर्ण और मधुर होती हैं। आपको मुक्तक काव्य लिखने में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उसमें धारा-प्रवाह है। आपकी भाषा शैली स्वच्छ, सुबोध और व्याकरण सम्मत है। भाषा आपकी शुद्ध निर्दोष तथा परिमार्जित है। आपकी कल्पनाएँ बड़ी कोमल हैं। अलंकारों का भी रुचिकर प्रयोग हुआ है। आप वर्तमान काल के प्रथम श्रेणी के कवियों में हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

परिचय—आपका जन्म संवत् १९६१ में पंजाब में हुआ था। यहीं आपने शिक्षा प्राप्त की। इनका विवाह १५ वर्ष की आयु में ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी. ए; एल-एल, बी. से हुआ। आप बड़ी देश-भक्त हैं। जब काँग्रेस ने कचहरी कालिजों का बायकाट करने को कहा तो आपने भी पढ़ना छोड़ दिया। आप स्त्री कवियों में बड़ा ऊँचा स्थान रखती हैं।

विशेष

आपकी कविताएँ सीधी सादी, सरल सुबोध, सरस और हृदय-स्पर्शी होती हैं। आपकी देश-भक्ति की कविताएँ विशेष कर 'झाँसी की रानी' 'वीरों का कैसा हो वसंत?' बड़ी लोकप्रिय हैं। हृदय पर प्रभाव डालने वाली अनुभूति-प्रधान आपकी कविताएँ 'परिचय' 'बालिका' 'मेरा नया बचपन' आदि हैं। आपकी ईश्वर के प्रति कविताएँ जैसे "ठुकरा दो या प्यार करो" 'मानिनी राधे' आदि में कल्पना भले ही न हो पर भाषा और भावों में स्वाभाविकता तन्मयता और प्रवाह है। आपकी शृङ्गार और प्रेम की कविताएँ भी बड़ी संयत और पवित्र भावों से परिपूर्ण हैं और करुणा रस की रचनाएँ भी सुन्दर हैं। आपकी कविताएँ वर्णनात्मक कहला सकती हैं। मुकुल, त्रिधारा, (कविता) और 'बिखरे मोती' कहानी-संग्रह आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

परिशिष्ट

(क) शैली क्या है?

जब हम अपने किसी मित्र को दूर पर आता हुआ देखते हैं तब फौरन हमारे मुँह से निकल पड़ता है—लीजिए अमुक तो आ गए। इसी प्रकार जिस लेखक या कवि का हमने अध्ययन किया है, मित्र की तरह बहुत दिनों तक जिसकी कृतियों के साथ रहे हैं, उसका एक वाक्य अथवा एक छंद सुनते ही हमारे मुँह से निकल पड़ेगा—यह वाक्य या छंद तो अमुक लेखक अथवा कवि का हो सकता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उस लेखक या कवि की सब रचनाओं को हमने कंठाग्र कर लिया है और सुनते ही भूली बात की तरह हमें कहा हुआ वाक्य या छंद याद आ जाता है। वास्तव में बात यह है कि जिस तरह हम अपने मित्र की चाल-ढाल, तर्ज-तरीका देख कर उसे पहचान लेते हैं, उसी प्रकार एक वाक्य या छंद सुनकर अपने प्रिय लेखक या कवि को। यह बात यों भी समझाई जा सकती है:—

हम अपने कमरे में बैठे हुए हैं। घर के बाहर से किसी ने आवाज़ दी और हमारे मुँह से निकल पड़ा—आओ भाई बहुत दिन बाद आए; अथवा आओ, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर ही रहा था। इसका आशय यह हुआ कि हम अपने मित्रों, पड़ोसियों अथवा सम्बन्धियों को केवल आवाज़ सुनकर ही पहचान जाते हैं। इसी प्रकार वाक्य या छंद—शब्द-योजना

और वाक्य-विन्यास—लेखक की वाणी के समान है; इस वाणी को—उसके कहने की रीति को बार-बार सुनते-सुनते हम उससे परिचित हो जाते हैं और इसीलिए एक वाक्य या छंद सुनकर कह सकते हैं—यह तो अमुक लेखक या कवि का है। यह कहना हमारे लिए केवल तभी सरल हो सकता है जब हम उसके कहने—लिखने—के ढंग से भली-भाँति परिचित हों। सीधे-साधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लेखक के लिखने या अपने भाव प्रकट करने का ढंग ही उसकी शैली है।

प्रत्येक लेखक या कवि की अनुभूति और कल्पना, उसका अनुभव और आदर्श; उसके विचार और भाव—एक शब्द में, उसका व्यक्तित्व—दूसरे से भिन्न होता है। जब वह कुछ लिखने बैठता है तब उसके व्यक्तित्व का लिखने के ढंग पर प्रभाव पड़ता है। यह बात सभी लेखकों के लिए सत्य है। अतः जब सभी लेखकों और कवियों का व्यक्तित्व अलग-अलग होगा तब सभी लिखने के ढंग भी भिन्न-भिन्न होंगे। इसलिए भावों और विचारों को प्रकट करने की प्रणाली में जो नवीनता अथवा भिन्नता अपने व्यक्तित्व की छाप अथवा प्रभाव के कारण आती है वही लेखक की शैली कहलाती है।

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसके विचार और भाव इस तरह व्यक्त किए जायँ कि पढ़ने या सुनने वालों पर उसका अधिक से अधिक प्रभाव पड़े। इस कार्य के लिए लेखक को भाषा की आवश्यकता पड़ती है। भाषा सार्थक शब्दों का ऐसा समूह है जो हमारे विचारों को दूसरों तक और दूसरों के विचारों को हम तक पहुँचाता है। परन्तु शब्द सार्थक होते हुये भी उस समय तक शक्तिहीन ही रहते हैं जब तक वे विचारों को

प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करने के लिए वाक्यों में सजाए नहीं जाते। अतः एक ओर शब्दों के प्रयोग का प्रश्न आता है और दूसरी ओर उनका इस ढंग से प्रयोग करने का कि वे विशेष रूप से प्रभाव डाल सकें। दूसरे शब्दों में, एक ओर तो शब्द विशेष महत्व के (Important) हैं और दूसरी ओर वाक्य-विन्यास—शब्दों को प्रभावोत्पादक ढङ्ग से सजाना। अपने भावों को प्रकट करने का कार्य यों तो इन दोनों की सहायता से होता है तो भी प्रधानता वाक्य-विन्यास की ही रहती है। अतः सुविधा के लिए, लेखन शैली के दो रूप किए जा सकते हैं।

(१) वाक्य विन्यास अथवा भाव-प्रकाशन-शैली।

(२) शब्द-योजना अथवा भाषा-शैली।

(१) भाव-प्रकाशन शैली

सबसे पहले लेखक की शैली पर उसकी रुचि, उद्देश्य और आदर्श का प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए एक लेखक की रुचि विषय को अत्यन्त सरल ढंग से व्यक्त करने की है और उसका उद्देश्य तथा आदर्श है साधारण से साधारण योग्यता के पाठकों को विषय भली-भाँति समझा देना। तब वह (पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदी की तरह) सरल वाक्यों का प्रयोग करके, एक ही बात बार-बार, दूसरे-दूसरे शब्दों में दोहराकर, सरल भाषा में इस ढंग से लिखेगा कि सभी पाठक बिना प्रयास उसकी बात समझ लें। यदि (द्विवेदीजी की भाँति ही) उस सरलता-प्रिय लेखक का उद्देश्य किसी वस्तु विशेष का प्रचार करना अथवा भूले भटके व्यक्तियों को उनका कर्त्तव्य सुझाना है तब वह सरल भाषा को अपनाकर उपदेशात्मक और

के लिए लिखे जाते हैं। इसके विपरीत सत्य, जीवन, धर्म, प्रेम, करुणा, आलोचना आदि गंभीर विचारात्मक विषयों के विवेचन के लिए प्रायः गंभीर शैली ही अपनानी पड़ती है। अपने दैनिक जीवन में भी हम प्रायः यह बात देखते हैं कि जब हम साधारण विषय पर वार्त्तालाप करते हैं तब गंभीर होने की आवश्यकता नहीं समझते; परन्तु गम्भीर (युवकों की भाषा में (Important) प्रश्न छिड़ने पर फौरन कह बैठते हैं—अच्छा, अब हँसी हो चुकी, गंभीर (serious) होकर काम की बातें करो। यही बात गंभीर विषयों का विवेचन करते समय लेखक भी अपने मन में कहता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक लेखक की शैली पर निजी रुचि, स्वभाव, उद्देश्य और आदर्श का प्रभाव तो एक ओर पड़ता है और विषय का बाहरी प्रभाव दूसरी ओर।

अतः किसी लेखक की शैली का अध्ययन करने के पूर्व हमें निम्नलिखित बातों को जानने का प्रयत्न करना चाहिए—

(१) परिस्थिति अथवा समय जब उसने ग्रन्थ-रचना आरम्भ की। (२) रुचि, स्वभाव, उद्देश्य और आदर्श। (३) विषय।

इसके पश्चात् उसकी शैली की आलोचना करने के लिए हमें वाक्य-विन्यास का अध्ययन करना पड़ेगा। वाक्य-रचना के विषय में साधारणतः यह देखना चाहिये कि लेखक ने वाक्य छोटे लिखे हैं अथवा बड़े; उनका संगठन कैसा है; समुच्चयबोधक "और" का अधिक प्रयोग करने से वाक्यों में शिथिलता तो नहीं आगई है। क्या जटिल और दुर्बोध तो नहीं हैं, जान-बूझ कर उन्हें बढ़ाने या जटिल बनाने का प्रयत्न

तो नहीं किया गया है, अनावश्यक वाक्यांशों का प्रयोग तो नहीं है। साथ ही, यह भी देखना चाहिए कि लेखक ने मुहावरों का समुचित प्रयोग किया है अथवा नहीं और उनसे क्या लाभ अथवा उनके न होने से क्या हानि हुई है। अन्तिम बात यह है कि अपने विचारों को प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करने के लिए उसने कैसे वाक्य लिखे हैं। कभी-कभी कई वाक्यों में प्रश्नवाचक चिह्न लगा कर अपनी बात पर जोर दिया जाता है। कोई कोई लेखक (जैसे हमारे बाबू जयशंकरप्रसाद) नाटकीय ढंग से वाक्य-रचना करके उन्हें प्रभावोत्पादक बनाते हैं। अन्त में; व्यंग्य और कटाक्ष की चुभती हुई कथतियाँ भी, यदि हों तो, छाँटना चाहिए।

(२) भाषा-शैली

भाषा शैली के विषय में सबसे पहले तो हमें यह देखना होगा कि हिन्दी के तीन रूपों में से—जो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के समय से प्रचलित हुए थे—उसने किस-किस को अपनाया है, और क्यों? प्रायः हम देखेंगे कि सभी लेखकों की भाषा एक से अधिक प्रकार की है और इस विभिन्नता का कारण, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, विषय का गम्भीर अथवा सरल होना तो एक ओर है और रुचि तथा आदर्श दूसरी ओर। अतः सबसे पहले हमें इन्हीं से परिचित होना चाहिए। एक लेखक (जैसे श्री प्रेमचन्दजी) का विषय केवल कहानी या उपन्यास लिखना है। साधारणतः उसकी भाषा सरल और प्रचलित होनी चाहिए। स्थल विशेष पर, पात्र की भाषा का ध्यान करके अथवा अन्य किसी कारण से, सम्भव है, अन्य दोनों रूपों में से एक के या दोनों के दर्शन भी हो जायँ; पर

कहानी लेखक यदि (बाबू रायकृष्णदासजी की भाँति) भावुक और कवि हुआ तो उसकी भाषा के साधारण रूप पर उसका प्रभाव भी पड़ता है और यदि (बाबू जयशंकरप्रसाद की तरह) लेखक भावुक कवि होते हुए अपना निजी आदर्श भी रखता है तो उस काव्यात्मक भाषा शैली में उस आदर्श के अनुसार भी परिवर्तन होना चाहिये। ऐसी दशा में उसकी भाषा में अलंकारों की छटा के साथ-साथ चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ तो मिलेंगी ही, भाषा का साधारण रूप भी आवरण से ढक जायगा।

इसके पश्चात् हमें विदेशी शब्दों—विशेष कर अरबी फारसी और अङ्गरेजी—के प्रयोग पर ध्यान देना चाहिए। आज राष्ट्रभाषा का महत्वपूर्ण प्रश्न छिड़ जाने के कारण इस ओर ध्यान देना और भी आवश्यक हो गया है।

अंतिम बात है हिन्दी भाषा के तीनों रूपों तथा विदेशी शब्दों के प्रयोग के विषय में लेखक के विचारों से परिचित होना। हमारा यह कार्य लेखक की भाषा-शैली के समझने में तो सहायक होगा ही, साथ ही हम भाषा तथा उसके रूपों का विकास का कारण सहित क्रम भी जान सकेंगे।

है जो विचित्र घटनाओं के कारण होती है। हमें जो उनकी कहानियों में अपूर्व आनन्द मिलता है वह यत्र तत्र साहित्यिक छटा के कारण। उनकी कवित्व-पूर्ण और संस्कृत-गर्भित शैली, जिसमें शिथिलता का पूर्णतया अभाव है, और उनके पात्रों का का स्वाभाविक कथोपकथन, उनकी कहानियों में जान डाल देता है। उनकी शैली और भाषा का प्रभाव उनके वस्तु-विन्यास में बाधक नहीं होता। यही 'प्रसाद' जी का कलाकौशल है जिससे पाठक का मन आप ही आप रमने के लिए बाध्य होता है। परन्तु उनकी आख्यायिकाओं में सब से बड़ा दोष यह है कि इनका आनन्द केवल इने-गिने साहित्यिक ही उठा सकते हैं, और न उनसे लोक-हित की आशा ही की जा सकती है। यही दो बातें जिनका अभाव 'प्रसाद' जी में है, प्रेमचन्दजी की कहानियों में हमें मिलती हैं।

प्रेमचंदजी की लेखन-कला में सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे जो कुछ लिखते हैं किसी न किसी उद्देश्य से। इन्होंने सामाजिक भंडा-फोड़ के बहाने को लेकर बहुत सी गल्पों की रचना की है। उनकी कहानियों के मुख्य दो विषय हैं, एक तो समाज-सुधार और दूसरा ग्राम-समस्या। उन्होंने बुराइयों को दिखाकर ही संतोष नहीं किया, बरन उनके सुधार के भी उपाय बताया है। वे लेखक भी हैं और सुधारक भी। किसी उद्देश्य को लेकर कहानी में निर्वाह करना बड़ा कठिन है; परन्तु प्रेमचंदजी ने इस विषय में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। साथ ही मानव-हृदय के गूढ़ भावों को मनोवैज्ञानिक ढंग पर सजाने में वे बड़े कुशल हैं। आपकी भाषा चुस्त, सरस और प्रवाहपूर्ण है। मुहावरेदार और चलताऊ भाषा में चरित्र-

(ख) कहानी लेखक 'प्रसाद'जी और प्रेमचँदजी

'प्रसाद'जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर भारतेन्दुजी की भांति साहित्य के सर्व अँगों की ओर ध्यान दिया और उनका विशेषकर महत्व इसलिए हो सकता है कि उन्होंने नाटक की कमी को पूरा किया। कहानी लिखने में भी इन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की। इनकी कुछ कहानियाँ आकाशदीप, बिसाती, प्रतिध्वनि इत्यादि स्थाई साहित्य में स्थान पाने योग्य समझी गई हैं। दूसरी ओर, प्रेमचन्दजी ने उपन्यास और कितनी ही कहानियां लिख कर हिंदी साहित्य का बड़ा उपकार किया है। उनके उपन्यास चरित्र-चित्रण में अपनी सानी नहीं रखते परन्तु कुछ विद्वानों का कथन है कि उनकी कहानियाँ उनके उपन्यासों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं।

'प्रसाद' और प्रेमचंद दोनों ही की कहानियाँ मौलिक हैं। परंतु 'प्रसाद' जी अपनी आख्यायिकाओं का कथानक प्रायः इतिहास से चुनते हैं। इसके विपरीत, प्रेमचंदजी की कहानियों का कथानक प्रायः सामाजिक ही रहता है। ऐतिहासिक कहानियों में भी प्रेमचंदजी मुगल-काल तक ही आते हैं जब कि 'प्रसादजी बौद्धकाल और उसके भी पहले की सुधि लेते हैं।

'प्रसाद' और प्रेमचंद की कहानियों में साम्य इसलिए नहीं है कि दोनों लेखकों के उद्देश्यों में अंतर है। 'प्रसाद ने कहानियाँ दूसरे दृष्टिकोण से लिखी हैं। उनका जीवन काव्यमय था। इसकी पूरी-पूरी छाप उनकी कहानियों पर है। उनमें न तो कौतूहल-पूर्ण घटनाओं का वर्णन है और न ऐसी दिलचस्पी

चित्रण, कथोपकथन, और स्वाभाविकता आदि उपन्यास के सारे अङ्गों को एक छोटी सी कहानी में सफलता-पूर्वक प्रेमचंद ही दिखा सके हैं। इस दृष्टिकोण से 'प्रसाद' उनकी समता नहीं कर पाते।

'प्रसाद' जी की कहानियों में काव्य का सा आनंद आता है। सुन्दर भाव-व्यंजना और मनुष्य के भावों का अंतर्द्वन्द्व चित्रित करने में आप सिद्धहस्त थे। पात्रों का कथोपकथन नाटक की भाँति होता है और उसकी बातचीत और भावों के सहारे 'प्रसाद' जी मानव-हृदय तक पहुँच जाते हैं। इसी से उनकी कहानियाँ हृदय की चुटकी लेती हैं।

'प्रसाद' की कहानियाँ साहित्यिक हैं—उनसे समाज का भला भले न ही होता हो किन्तु वे हृदय की वस्तु हैं। प्रेमचन्द में वह साहित्यिक आनन्द नहीं है; पर समाज का भला होता है। दोनों में एक न एक कमी है; पर साहित्य की वृद्धि दोनों से हुई है। उनकी लेखनी से कहानियों की वह सरस-धारा बही जिससे रिक्त साहित्य हरा भरा होकर पनप उठा।

(ग) सूर और तुलसी

(१) तुलसी राम-भक्ति धारा के कवि थे और सूर कृष्ण भक्ति धारा के।

(२) तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के भक्त थे और सूर बाल और रसिक कृष्ण के प्रेमी।

(३) तुलसी ने अवधी (ठेठ और साहित्यिक) और ब्रज (ठेठ और साहित्यिक) दोनों ही में सफलतापूर्वक कविता की थी पर सूर ने केवल साहित्यिक ब्रज भाषा में।

(४) तुलसी का क्षेत्र बहुत व्यापक था। अनुभवी तुलसी ने मानव-समाज की सभी परिस्थितियों, देश के सभी भावों का वर्णन किया है। वह हमें धर्मोपदेशक, समाज-सुधारक, धर्म के मतभेद मिटाने वाले आदि की हैसियत से मिलते हैं। राजनीति, धर्म, इतिहास, भूगोल किसी विषय को उन्होंने बिल्कुल छोड़ नहीं दिया है, सभी पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। उस समय की सामाजिक दशा का बहुत कुछ ज्ञान हमें उनकी कविता से मिलता है। संक्षेप में कहना यह है कि तुलसी जैसा व्यापक कवि हमें दूसरा नहीं मिलता। पर यदि केवल विनय और बालकृष्ण ही को लेकर हम दोनों की तुलना करते हैं तो सूर का पलड़ा बहुत नीचा दिखाई देता है। यदि व्यापकता की दृष्टि से देखते हैं तो तुलसी का पलड़ा नीचा है। सूर का क्षेत्र बहुत परिमित था। उनकी पहुँच कदंब के वृक्ष, यमुना-पुलिन करील की झाड़ियों और ब्रज के गांव तक ही थी। देश के सभी भागों के अनुभव और प्रकाश का उन्हें अवकाश न था

और आवश्यकता भी नहीं थी। मानव समाज की प्रेम-विषयक प्रकृति का ज्ञान हमें उनकी कविता में अटूट मिलता है और वह इतना प्रचुर और इतने अच्छे रूप में कि तुलसी उन तक नहीं पहुँच सके। विनय, वात्सल्य-वर्णन और भ्रमर-गीत इनके सर्वश्रेष्ठ हैं।

(५) तुलसी ने प्रबन्ध-काव्य और स्फुट-काव्य दोनों लिखे हैं और सूर ने केवल फुटकर या मुक्तक-काव्य लिखा है यद्यपि घटनायें शृंखला-बद्ध सी दिखाई देती हैं। मुक्तक-काव्य के कारण पुनरावृत्ति भी सूर में है।

(६) तुलसी ने सब प्रचलित काव्य-शैलियों में कविता की है:—भाटों की छप्पय-कविता-सवैया शैली, निर्गुण-पन्थी कवियों की दोहा-शैली, सूफियों की दोहा चौपाई शैली, विद्यापति की पदावली, रहीम की बरवै शैली आदि। पर सूर ने केवल गीत-काव्य ही लिखा है।

दोनों कवि ही प्रतिभावान थे। अपने-अपने इष्टदेवों के भक्त थे। दोनों ने अपनी दीनता दिखा कर अपने अपने इष्टदेवों से दया करने और भव-बन्धन तथा माया-मोह से छुटकारा दिलाने के लिए प्रार्थना की है और विनय के पद लिखे हैं। अतः हमारी सम्मति में सूर अपनी जगह बड़े हैं और तुलसी अपनी जगह। हाँ, शुद्ध काव्य की दृष्टि से सूर और काव्य-कला तथा उपयोगिता की एकता के कारण हमें तुलसी को श्रेष्ठ समझना चाहिए।

(घ) गुप्तजी और हरिऔधजी

(१) गुप्तजी ने केवल पद्य लिखा है पर हरिऔधजी ने गद्य और पद्य दोनों लिखने में सफलता प्राप्त की है।

(२) गुप्तजी ने केवल खड़ी बोली में लिखा है जो नितांत शुद्ध है। हरिऔधजी पहले ब्रजभाषा में लिखते थे—बाद में खड़ी बोली के क्षेत्र में आ गए।

(३) गुप्तजी की भाषा संस्कृत-गर्भित नहीं होती। वह चलती हुई नित्य—प्रति की साहित्यिक भाषा होती है जो सरस, सरल और प्रौढ़ है। हरिऔधजी कठिन से कठिन और सरल से सरल भाषा और शैली के प्रयोग में अभ्यस्त हैं।

(४) गुप्तजी हरिऔधजी की तरह अधिक अलंकार-प्रिय नहीं हैं। अनुप्रास की वह छटा भी हमें उनकी रचनाओं में नहीं दिखाई देती जो हरिऔधजी की कविता में मिलती है।

(५) गुप्तजी के काव्यों का विषय प्राचीन-संस्कृति ही प्रायः रहा है। हरिऔधजी ने रीति-काल के कवियों की भाँति रस-कलश भी लिखा है मुहावरों आदि के लिए चोखे चौपदे आदि भी और प्राचीन परंपरा को दृष्टिकोण में रखकर प्रिय-प्रवास भी।

(६) वर्तमान समय की काव्य की प्रगति का दोनों पर प्रभाव अवश्य पड़ा है। नवीनता की ओर भी दोनों ही बढ़े हैं। नवीन विचार-धारा के साथ प्राचीन विचार-धारा का सुन्दर सम्मिश्रण दोनों की विशेषता है।

दोनों के प्रकृति वर्णन बहुत श्रेष्ठ हुए हैं।

गुप्तजी ने संस्कृत वृत्तों में तो कविता की ही है, साथ ही हिंदी के अन्य अनेक छंदों को भी अपनाया है। हरिऔधजी को संस्कृत-वृत्तों के लिखने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है परन्तु उनके काव्य में छन्दों की वह विविधता नहीं मिलती।

(ङ) पंतजी और 'प्रसाद' जी

(१) दोनों ने खड़ी बोली में कविता की है। दोनों की भाषा पुष्ट, प्रवाह-पूर्ण और परिमार्जित है। पंत की भाषा बहुत मधुर है, 'प्रसाद' की भाषा कहीं-कहीं दुरुह और कठिन हो गई है—कारण है उनके दार्शनिक विचार और उनकी रहस्योन्मुखी भावनायें।

(२) पंतजी ने व्याकरण की शृंखलाएँ अपने काव्य को मधुर बनाने और उपादेयता के विचार से तोड़ी हैं किन्तु 'प्रसाद' जी ने इस स्वातंत्र्य-प्रियता का ऐसा परिचय नहीं दिया है। इनकी भाषा व्याकरण-सम्मत है। प्रांतीय शब्दों का भी प्रयोग 'प्रसाद' जी ने पंतजी की भांति मधुरता लाने के लिये नहीं किया है।

(३) दोनों छायावादी कवि हैं। प्रकृति, प्रेम और दार्शनिकता दोनों ही की कविताओं की विशेषता है। दोनों ही कल्पना-प्रधान कवि हैं। और दोनों ही की कविता में कल्पना और अनुभूति का अभूत-पूर्व सम्मिश्रण है। किन्तु सब मिल कर दार्शनिकता 'प्रसाद' में अधिक है।

(४) हिन्दी साहित्य में पंत एक कवि के नाम से ही पुकारे और समझे जाते हैं जबकि 'प्रसाद' नाटककार, कवि, उपन्यासकार, कहानी-लेखक और समालोचक के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है, यद्यपि पंत ने भी कहानियाँ आदि लिखी हैं।

(५) 'प्रसाद' जी हिन्दी-साहित्य को एक नवीन विचार धारा देकर उसे एक नवीन मार्ग पर ले गए हैं। उन्हें हम युग-परिवर्तक और क्रान्तिकारी लेखक कह सकते हैं—साहित्य के प्रति अंग में पंतजी का भी मार्ग काव्य में वही है जो 'प्रसाद' का। किन्तु पंत को वह सम्मान प्राप्त नहीं है। प्रसाद छायावाद के जन्मदाता हैं, पंत उसके पालक-पोषक।

(६) दोनों ने तुकांत और अतुकांत कविताओं, गीति-काव्य तथा नवीन प्रकार के छंदों का सृजन किया है। पंत में प्रकृतिवर्णन कुछ अधिक हो सकता है। 'प्रसाद' में मानव अनुभूति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अधिक है।

संक्षेप में, दोनों ही साहित्य के प्रथम श्रेणी के कवि हैं और दोनों ही बँगला तथा भारत के प्राचीन साहित्य से प्रभावित हुए हैं।

(ङ) पंतजी और 'प्रसाद' जी

(१) दोनों ने खड़ी बोली में कविता की है। दोनों की भाषा पुष्ट, प्रवाह-पूर्ण और परिमार्जित है। पंत की भाषा बहुत मधुर है, 'प्रसाद' की भाषा कहीं-कहीं दुरुह और कठिन हो गई है—कारण है उनके दार्शनिक विचार और उनकी रहस्योन्मुखी भावनायें।

(२) पंतजी ने व्याकरण की शृंखलाएँ अपने काव्य को मधुर बनाने और उपादेयता के विचार से तोड़ी हैं किन्तु 'प्रसाद' जी ने इस स्वातंत्र्य-प्रियता का ऐसा परिचय नहीं दिया है। इनकी भाषा व्याकरण-सम्मत है। प्रांतीय शब्दों का भी प्रयोग 'प्रसाद' जी ने पंतजी की भांति मधुरता लाने के लिये नहीं किया है।

(३) दोनों छायावादी कवि हैं। प्रकृति, प्रेम और दार्शनिकता दोनों ही की कविताओं की विशेषता है। दोनों ही कल्पना-प्रधान कवि हैं। और दोनों ही की कविता में कल्पना और अनुभूति का अभूत-पूर्व सम्मिश्रण है। किन्तु सब मिल कर दार्शनिकता 'प्रसाद' में अधिक है।

(४) हिन्दी साहित्य में पंत एक कवि के नाम से ही पुकारे और समझे जाते हैं जबकि 'प्रसाद' नाटककार, कवि, उपन्यासकार, कहानी-लेखक और समालोचक के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है, यद्यपि पंत ने भी कहानियाँ आदि लिखी हैं।

(५) 'प्रसाद' जी हिन्दी-साहित्य को एक नवीन विचार धारा देकर उसे एक नवीन मार्ग पर ले गए हैं। उन्हें हम युग-परिवर्तक और क्रान्तिकारी लेखक कह सकते हैं—साहित्य के प्रति अंग में पंतजी का भी मार्ग काव्य में वही है जो 'प्रसाद' का। किन्तु पंत को वह सम्मान प्राप्त नहीं है। प्रसाद छायावाद के जन्मदाता हैं, पंत उसके पालक-पोषक।

(६) दोनों ने तुकांत और अतुकांत कविताओं, गीति-काव्य तथा नवीन प्रकार के छंदों का सृजन किया है। पंत में प्रकृतिवर्णन कुछ अधिक हो सकता है। 'प्रसाद' में मानव अनुभूति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अधिक है।

संक्षेप में, दोनों ही साहित्य के प्रथम श्रेणी के कवि हैं और दोनों ही बँगला तथा भारत के प्राचीन साहित्य से प्रभावित हुए हैं।

(च) हिंदी-गद्य का विकास

हिंदी गद्य का आविर्भाव संवत् १२७६ में माना जाता है। इसका पहला उदाहरण दानपत्रों में—जैसे 'मेवाड़ की सनद" (सं० १२२६) में मिलता है। फिर लगभग २०० वर्ष तक हिंदी गद्य की क्या दशा रही—इसका हाल हमें नहीं मालूम। कारण, इस संबंध में अभी तक विशेष खोज नहीं हुई है। इसके पश्चात सं० १४०० से १७०० तक के कुछ लेखकों और उनके ग्रन्थों का पता लगा है।

इन ग्रन्थों की भाषा और शैली अत्यंत अनगढ़ और शिथिल है। यह ग्रन्थ प्रायः ब्रजभाषा के गद्य में लिखे गये हैं। यद्यपि यह काल ब्रजभाषा-काव्य के लिए स्वर्ण काल था, तथापि गद्य के लिए धीरे धीरे लोग खड़ी बोली को अपनाने लगे थे। इसका एक कारण यह था कि यह जनता की बोलचाल की भाषा थी। अतः इसके पश्चात् खड़ी बोली का युग आरंभ होता है। गद्य प्रगति के काल-विभाग के अनुसार इस खड़ी बोली के विकास-काल को, अपनी सरलता के लिए, हम निम्नलिखित चार भागों में बाँट सकते हैं—

आविर्भाव-काल

यद्यपि इस युग का कोई ग्रन्थ साहित्यिकता या मौलिकता की दृष्टि से महत्व का नहीं, तथापि भाषा के इतिहास में इस युग का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यों तो ब्रजभाषा और राजस्थानी के कुछ ग्रन्थ इस काल में भी लिखे गए; पर खड़ी बोली का निरन्तर विकास होता रहा। इस काल के कुछ प्रसिद्ध लेखक ये हैं।

लेखक	ग्रन्थ	भाषा साधारणतः
(१) मुन्शी सदासुखलाल	सुखसागर	खड़ी बोली
(२) इंशाअल्लाखाँ	रानी केतकी की कहानी	,,
(३) लल्लूलाल	प्रेमसागर	,,
(४) सदलमिश्र	नासिकेतोपाख्यान	,,
(५) राजा शिवप्रसाद	कुछ खेल	उर्दू के बहुत निकट हिन्दी
(६) राजा लक्ष्मणसिंह	अभिज्ञान शाकुंतल और रघुवंश	शुद्ध खड़ी बोली
(७) स्वामी दयानन्द	सत्यार्थ प्रकाश	हिन्दी (गुजराती से प्रभावित)

इन लेखकों में मुन्शी सदासुखलाल को वर्तमान हिंदी-गद्य का प्रथम लेखक हम मान सकते हैं। सदल मिश्र की भाषा भी उनसे मिलती-जुलती है। लल्लूलाल की भाषा, खड़ी बोली की प्रधानता होते हुए भी मुन्शीजी की भाषा से कुछ भिन्न है। पर

हिन्दी के प्रचार का प्रश्न अंतिम तीन सज्जनों के समय में आता है। राजा शिवप्रसाद की उर्दू-प्रियता ने राजा लक्ष्मणसिंह सरीखे हिंदी के पक्षपाती पैदा कर दिये। स्वामीजी की सुधार भावना की उत्तेजना ने उसके पक्ष को और भी मजबूत कर दिया।

भारतेंदु-युग

यहीं से भारतेंदु-युग प्रारम्भ होता है। वास्तव में, भारतेंदुजी ही हिंदी-गद्य के जन्मदाता हैं उन्होंने उसे 'साहित्यिक' भाषा का रूप देकर उसके साहित्य के विभिन्न अङ्गों की पूर्ति का सराहनीय प्रयत्न किया। उस समय "नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचार-धारा बदल चली थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गए थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था।" इस कमी को उन्होंने दूर किया और "हिन्दी को वे शिक्षित जनता के सहाचर्य में ले आये।" फलतः कई विद्वान् उसकी उन्नति करने में संलग्न हुए और उसके विभिन्न अंगों की पूर्ति होने लगी। सर्व श्री कार्तिकप्रसाद खत्री, केशवराम भट्ट, श्रीनिवास, दास, तोताराम, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, राधारमण गोस्वामी, राजारामपालसिंह, बालमुकुंद गुप्त आदि का नाम इस विषय में उल्लेखनीय है।

द्विवेदी-युग

परंतु इस युग के लेखकों के हिंदी-गद्य की स्तुत्य सेवा भी उसमें दो तीन त्रुटियाँ रह गई—

(क) भाषा का प्रचार तो होने लगा लेकिन उसकी शुद्धता, संस्कार, और परिमार्जन की ओर किसी का अधिक ध्यान न था।

(ख) शैली का कोई रूप स्थिर न था।

(ग) हिन्दी-गद्य का प्रचार अधिक न था।

इन तीनों त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा द्विवेदी-युग में की गई। इसके लिए बड़े-बड़े साहित्यिक युद्ध हुए। पर अंत में अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय के कारण इस युग के लेखकों को सफलता प्राप्त हुई। इस युग के प्रमुख लेखक सर्व श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, गोपालराम गहमरी, मिश्रबंधु, पद्मसिंह शर्मा, भगवानदीन 'दीन', राधाकृष्णदास, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', माधव शुक्ल, देवकीनन्दन खत्री, ज्वालादत्त शर्मा, सीताराम, रामचन्द्र वर्मा, गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा आदि-आदि हैं। इन लेखकों के सत्प्रयत्न से निबन्ध, समालोचना नाटक, उपन्यास, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, पुरातत्व, भ्रमण, जीवन-चरित्र, शिक्षा आदि अनेकानेक विषयों पर सुन्दर रचनाएँ होने लगीं।

आधुनिक युग

ऊपर जो सूची दी गई है उसमें के अधिकांश हमें आधुनिक युग में ले आते हैं। बहुत से नए लेखक भी आज अपनी प्रतिभा-प्रभा से गद्य-साहित्य-संसार को आलोकित कर रहे हैं। इनमें सर्वश्री जयशंकर 'प्रसाद', गोविंदवल्लभ पंत, श्री 'उग्र', सुदर्शन,

(क) भाषा का प्रचार तो होने लगा लेकिन उसकी शुद्धता, संस्कार, और परिमार्जन की ओर किसी का अधिक ध्यान न था।

(ख) शैली का कोई रूप स्थिर न था।

(ग) हिन्दी-गद्य का प्रचार अधिक न था।

इन तीनों त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा द्विवेदी-युग में की गई। इसके लिए बड़े-बड़े साहित्यिक युद्ध हुए। पर अंत में अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय के कारण इस युग के लेखकों को सफलता प्राप्त हुई। इस युग के प्रमुख लेखक सर्व श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, गोपालराम गहमरी, मिश्रबंधु, पद्मसिंह शर्मा, भगवानदीन 'दीन', राधाकृष्णदास, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', माधव शुक्ल; देवकीनन्दन खत्री, ज्वालादत्त शर्मा, सीताराम, रामचन्द्र वर्मा, गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा आदि-आदि हैं। इन लेखकों के सत्प्रयत्न से निबन्ध, समालोचना नाटक, उपन्यास, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, पुरातत्व, भ्रमण, जीवन-चरित्र, शिक्षा आदि अनेकानेक विषयों पर सुन्दर रचानाएँ होने लगीं।

आधुनिक युग

ऊपर जो सूची दी गई है उसमें के अधिकांश हमें आधुनिक युग में ले आते हैं। बहुत से नए लेखक भी आज अपनी प्रतिभा-प्रभा से गद्य-साहित्य-संसार को आलोकित कर रहे हैं। इनमें सर्वश्री जयशंकर 'प्रसाद', गोविंदवल्लभ पंत, श्री 'उग्र', सुदर्शन,

बद्रीनाथ भट्ट, प्रेमचन्द, विश्वंभरनाथ 'कौशिक', गुलाबराय, वृन्दावन लाल शर्मा, राय कृष्णदास, श्रीराम शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, नलिनीमोहन सान्याल धीरेंद्र वर्मा, जैनेंद्र, बनारसीदास चतुर्वेदी, आदि अनेक लेखक हिंदी की सर्वांगीण उन्नति की ओर प्रयत्नशील हैं। यह द्विवेदी युग और आधुनिक युग के लेखकों के प्रयास का ही सुपरिणाम है कि आज हिंदी साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति हो रही है और हिंदी आज राष्ट्र-भाषा समझी जाने लगी है। इसकी यह उन्नति देखकर हमारा रोम-रोम आज हर्ष से पुलकित हो जाता है और हमें पूर्ण आशा होती है कि भविष्य में शीघ्र ही हिंदी की आशातीत और अपूर्व उन्नति हो जायगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस आशा को पूर्ण करने की हमें शक्ति दे।

(ङ) हिंदी-काव्य का विकास

हिंदी काव्यके इतिहास को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) वीर गाथा काल—(सं० १०५० से सं० १३५० तक) इस समय वीर रस की कविताएँ ही अधिक हुई। तत्कालीन परिस्थिति इसका कारण है। उस समय चारों ओर युद्ध हो रहे थे; स्वयं राजपूत ही आपस में लड़ रहे थे। अतः कविगण अपने राजाओं को उत्साहित करने के लिए इस समय वीर रस की कविताएँ बनाते रहे। पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो और आल्हाखण्ड इस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

T (२) भक्तिकाल—(सं० १३५० से १७०० तक) देश में शान्ति स्थापित होने के कुछ समय पहले से ही कवियों ने भक्ति और ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ करनी आरम्भ करदी थीं। ये भक्त कवि प्रायः तीन श्रेणी में बाँटे जा सकते हैं:—

(क) संत कवि—इस धारा के वेदांती कवि निर्गुण ईश्वर के मानने वाले और तीर्थ, मूर्त्ति-पूजादि के विरोधी थे।

(ख) प्रेम मार्गी या सूफी कवि जिन्होंने अवधी में आख्यान काव्य लिखे हैं। इन में जायसी सर्व-श्रेष्ठ हैं।

(ग) सगुण भक्त—ये कवि तथा भक्त सगुण ईश्वर और अवतार-वाद के सिद्धान्त को मानने वाले थे। इस श्रेणी की दो धाराएँ थीः—

(ङ) हिंदी-काव्य का विकास

हिंदी काव्यके इतिहास को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) वीर गाथा काल—(सं० १०५० से सं० १३५० तक) इस समय वीर रस की कविताएँ ही अधिक हुईं। तत्कालीन परिस्थिति इसका कारण है। उस समय चारों ओर युद्ध हो रहे थे; स्वयं राजपूत ही आपस में लड़ रहे थे। अतः कविगण अपने राजाओं को उत्साहित करने के लिए इस समय वीर रस की कविताएँ बनाते रहे। पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो और आल्हाखण्ड इस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

T (२) भक्तिकाल—(सं० १३५० से १७०० तक) देश में शान्ति स्थापित होने के कुछ समय पहले से ही कवियों ने भक्ति और ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ करनी आरम्भ करदी थीं। ये भक्त कवि प्रायः तीन श्रेणी में बाँटे जा सकते हैं:—

(क) संत कवि—इस धारा के वेदांती कवि निर्गुण ईश्वर के मानने वाले और तीर्थ, मूर्त्ति-पूजादि के विरोधी थे।

× (ख) प्रेम मार्गी या सूफी कवि जिन्होंने अवधी में आख्यान काव्य लिखे हैं। इन में जायसी सर्व-श्रेष्ठ हैं।

+ (ग) सगुण भक्त—ये कवि तथा भक्त सगुण ईश्वर और अवतार-वाद के सिद्धान्त को मानने वाले थे। इस श्रेणी की दो धाराएँ थीं:—

(क) हिंदी-काव्य का विकास

हिंदी काव्यके इतिहास को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) वीर गाथा काल—(सं० १०५० से सं० १३५० तक) इस समय वीर रस की कविताएँ ही अधिक हुई। तत्कालीन परिस्थिति इसका कारण है। उस समय चारों ओर युद्ध हो रहे थे; स्वयं राजपूत ही आपस में लड़ रहे थे। अतः कविगण अपने राजाओं को उत्साहित करने के लिए इस समय वीर रस की कविताएँ बनाते रहे। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो और आल्हाखण्ड इस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

T (२) भक्तिकाल—(सं० १३५० से १७०० तक) देश में शान्ति स्थापित होने के कुछ समय पहले से ही कवियों ने भक्ति और ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ करनी आरम्भ करदी थीं। ये भक्त कवि प्रायः तीन श्रेणी में बाँटे जा सकते हैं:-

(क) संत कवि—इस धारा के वेदांती कवि निर्गुण ईश्वर के मानने वाले और तीर्थ, मूर्त्ति-पूजादि के विरोधी थे।

× (ख) प्रेम मार्गी या सूफी कवि जिन्होंने अवधी में आख्यान काव्य लिखे हैं। इन में जायसी सर्व-श्रेष्ठ हैं।

+ (ग) सगुण भक्त—ये कवि तथा भक्त सगुण ईश्वर और अवतार-वाद के सिद्धान्त को मानने वाले थे। इस श्रेणी की दो धाराएँ थीः—

(ञ) हिंदी-काव्य का विकास

हिंदी काव्यके इतिहास को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) वीर गाथा काल—(सं० १०५० से सं० १३५० तक) इस समय वीर रस की कविताएँ ही अधिक हुईं। तत्कालीन परिस्थिति इसका कारण है। उस समय चारों ओर युद्ध हो रहे थे; स्वयं राजपूत ही आपस में लड़ रहे थे। अतः कविगण अपने राजाओं को उत्साहित करने के लिए इस समय वीर रस की कविताएँ बनाते रहे। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो और आल्हाखण्ड इस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

T (२) भक्तिकाल—(सं० १३५० से १७०० तक) देश में शान्ति स्थापित होने के कुछ समय पहले से ही कवियों ने भक्ति और ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ करनी आरम्भ करदी थीं। ये भक्त कवि प्रायः तीन श्रेणी में बाँटे जा सकते हैं:-

(क) संत कवि—इस धारा के वेदांती कवि निर्गुण ईश्वर के मानने वाले और तीर्थ, मूर्त्ति-पूजादि के विरोधी थे।

× (ख) प्रेम मार्गी या सूफी कवि जिन्होंने अवधी में आख्यान काव्य लिखे हैं। इन में जायसी सर्व-श्रेष्ठ हैं।

+ (ग) सगुण भक्त—ये कवि तथा भक्त सगुण ईश्वर और अवतार-वाद के सिद्धान्त को मानने वाले थे। इस श्रेणी की दो धाराएँ थीं:—

इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवि (१) आलम (२) घन आनंद (३) बोधा (४) ठाकुर (५) दीनदयाल गिरी।

रीति-काल—(सं० १७००से १६०० तक) इस युग में रीति ग्रन्थ लिखे गए जिनमें नायक नायिका भेद, रस अलंकार आदि का वर्णन किया गया। कवियों ने स्फुट काव्य ही लिखा। इस युग में शृङ्गार रस का जोर रहा। बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम, भूषण इस काल में प्रसिद्ध कवि थे।

→ आधुनिक काल—(सं० १६०० से अब तक) वर्तमान युग में व्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। किन्तु व्रज भाषा में भी लोगों ने कविताएँ की हैं जैसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र रत्नाकर, रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि आदि ने व्रज भाषा में ही लिखा है। इस युग में विषय में भी परिवर्तन हुआ है। आजकल शृङ्गार पर कविताएँ कम लिखी जाती हैं, समाज सुधार और राजनीति की इस समय प्रधानता है।

× इन कवियों की रचनाएँ देखकर कहा जा सकता है कि हिंदी-कविता का भविष्य बहुत उज्वल है।

≠ वर्तमान युग के आदि कवि:—

प्रथम उत्थान (सं० १६२५-१६५०)

(१६५०) (१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (२) प्रताप नारायण मिश्र (३) बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (४) अम्बिकादत्त व्यास (५) साह कुनन्दन लाल 'ललित किशोरी'।

इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवि (१) आलम (२) घन आनंद (३) बोधा (४) ठाकुर (५) दीनदयाल गिरी।

रीति-काल—(सं० १७००से १९०० तक) इस युग में रीति ग्रन्थ लिखे गए जिनमें नायक नायिका भेद, रस अलंकार आदि का वर्णन किया गया। कवियों ने स्फुट काव्य ही लिखा। इस युग में शृङ्गार रस का जोर रहा। बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम, भूषण इस काल में प्रसिद्ध कवि थे।

→ आधुनिक काल—(सं० १९०० से अब तक) वर्तमान युग में ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। किन्तु ब्रज भाषा में भी लोगों ने कविताएँ की हैं जैसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र रत्नाकर, रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि आदि ने ब्रज भाषा में ही लिखा है। इस युग में विषय में भी परिवर्तन हुआ है। आजकल शृङ्गार पर कविताएँ कम लिखी जाती हैं, समाज सुधार और राजनीति की इस समय प्रधानता है।

× इन कवियों की रचनाएँ देखकर कहा जा सकता है कि हिंदी-कविता का भविष्य बहुत उज्जवल है।

≠ वर्तमान युग के आदि कवि:—

प्रथम उत्थान (सं० १९२५-१९५०)

(१९५०) (१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (२) प्रताप नारायण मिश्र (३) बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (४) अम्बिकादत्त व्यास (५) साह कुनन्दन लाल 'ललित किशोरी'।

वर्तमान वाद युग में छायावाद, हृदयवाद और रहस्य वाद आदि का जोर है। इस 'वाद युग' के तीसरे खेवे के कवियों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

तीसरा खेवा—

अनुभूति-प्रधान कवि—(१) पं० माखन लाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' (२) राय कृष्ण दास (३) सियाराम शरण गुप्त (४) पं० बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' (५) बाबू भगवती चरण वर्मा

कल्पना-प्रधान कवि:—

(१) जयशंकर प्रसाद (२) सुमित्रा नन्दन पंत (३) पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (४) श्रीमती महादेवी वर्मा (५) रामकुमार वर्मा।

इन कवियों की रचनाएँ देखकर कहा जा सकता है कि हिन्दी-कविता का भविष्य बहुत उज्जवल है।